अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

❑ मूल्य : 5.00
❑ अंक : 09
❑ 16-31 दिसंबर, 2013
❑ वर्ष : 37

धैर्य जरूरी है

अगर आप मानते हों कि मेरी अंतरात्मा के माध्यम से ईश्वर मुझसे जो-कुछ कहता है, आपसे मैं वही कहता हूं तो आप मेहरबानी करके मुझे यह भरोसा दिलायें कि अगर सरकार मुझे सजा दे तो आप अपना गुस्सा पी जायेंगे, उसका विस्फोट नहीं होने देंगे; बल्कि सरकार से बुलंद आवाज में यह कहेंगे कि चाहे हमें फांसी दो या जेल, आपको हमारा सहयोग नहीं मिल सकता; आपको हमारा सहयोग जेल में मिलेगा; फांसी के तख्ते पर मिलेगा, लेकिन फौजी रिसालों में नहीं, विधानसभाओं में नहीं; और न किसी सरकारी महकमे में।...

इस शिक्षा के लिए शारीरिक शक्ति की जरूरत नहीं है और न कोई खास इल्म सीखने की जरूरत है। इसके लिए बस एक ही तत्त्व को जानना जरूरी है—धैर्य को। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह आपको ऐसी प्रेरणा दे, ऐसी शक्ति दे कि हिन्दुस्तान और सब कुछ भूलकर इस काम को अपने हाथ में ले ले। अगर हम इसे साध लें तो हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे के प्रेम के गुलाम बनकर रहेंगे और दुनिया को यह हुक्म दे सकने की स्थिति में होंगे कि बेईमानी और अन्याय बंद करो।

(नवजीवन, 15-8-1920)

–महात्मा गांधी

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत

वर्ष : 37, अंक : 09
16-31 दिसबर, 2013

सर्व सेवा संघ
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

संपादक
बिमल कुमार
मो. 9235772595

प्रसार व्यवस्थापक
उमेश कुमार

मूल्य : पांच रुपये

शुल्क
वार्षिक : 100 रुपये
आजीवन : 1,000 रुपये

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
sarvodayavns@yahoo.co.in
Website : sssprakashan.com

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

अंदर के पृष्ठों पर...

1. कविताएं... 2
2. विकास की अवधारणा... 3
3. स्वराज ही देश को... 4
4. दक्षिणी एशिया में... 6
5. सदियों पुरानी है भारत... 8
6. खेती में असली क्रांति... 12
7. देशी बीजों की खेती... 13
8. पर्यावरण सहित हो... 14
9. आर्थिक लाभ से पर्यावरण... 15
10. समाज आधारित समाज... 16
11. गंगा के बाद यमुना की... 17
12. गतिविधियां एवं समाचार... 19
13. दिल्ली के भरोसे न बैठें... 20

ज्ञान की मशाल

–प्रो. बसन्ता

हम जिन्दगी में ज्ञान की मशाल लें जला ।
क्यों अंधकार कूप में हम रह रहे भला ॥

हम आइना हैं देश के सुंदर भविष्य का ।
हम देश के सशक्त कर्णधार बनेंगे ॥
हम मर मिटेंगे देश के स्वाभिमान के लिए ।
इस देश की यश-कीर्ति का विस्तार करेंगे ॥

सत्य और ज्ञान ही जीवन की मेखला ।
हम जिन्दगी में ज्ञान की मशाल लें जला ॥

यत्नशील हों सदा हम ज्ञान के लिए,
शिक्षा से ही दुख-दर्द का संहार करेंगे ।
शिक्षा का ध्येय है सदा निर्माण के लिए,
नव चेतना का विश्व में संचार करेंगे ॥

शिक्षा से ही बनेगी एकता की शृंखला ।
हम जिन्दगी में ज्ञान की मशाल लें जला ॥

हम एकता से बढ़ेंगे आपस में प्यार कर,
समस्त विश्व है एक सुंदर संस्था ।
हम इस महान् देश की वीणा के तार हैं,
हममें भरी है देश के प्रति उच्च आस्था ॥

हम ज्ञान और विवेक से ही लेंगे फैसला ।
हम जिन्दगी में ज्ञान की मशाल लें जला ॥

यह देश है हमारा, हम देश के लिए,
आओ शपथ लें आज हम एक स्वर से यहां ।
लक्ष्य से पीछे नहीं हटेंगे हम कभी ,
उत्तीर्ण होंगे हम सदा जीवन का इम्तहां ॥

ऐसे ही कर सकेंगे हम विश्व का भला ।
हम जिन्दगी में ज्ञान की मशाल लें जला ॥

क्यों अंधकार कूप में हम रह रहे भला !

केशव शरण की दो कविताएं

चेहरा

जिसका चेहरा
बुरी तरह से बिगाड़ दिया था
पिछली सरकार की पुलिस ने
वर्तमान सरकार के सर्जनों ने
इतनी कुशलता से प्लास्टिक सर्जरी की है
कि पहले से बहुत ज्यादा हसीन हो गया है
उसका चेहरा
जो अब पोस्टरों में हंस रहा है चारों तरफ
बिखेरते हुए
अपनी अदाएं
अपने जलवे

लेकिन यह किसी नेता की बात हुई
मैं जनता का चेहरा चाहता हूं
संवरा हुआ

पुल पर श्रेय की होड़

फूलों से सजाया गया है पुल
आज पुल का उद्घाटन है
खूब पैसा बहा है इसके बनने में
यह कमजोर है या मजबूत
लेकिन एक बहुत बड़ी जन सुविधा है जरूर
जिसका श्रेय लेने की होड़ मची है दोनों ओर
भले इस श्रेय का कोई मानी नहीं है
जैसे नदी में
पानी नहीं है।

❑ *एस. 2/564, सिकरौल, वाराणसी-221002, (उत्तर प्रदेश), मो. 09415295137*

संपादकीय

विकास की अवधारणा एवं चुनाव

पांच राज्यों में हुए चुनाव का एक महत्त्वपूर्ण पहलू उभर कर आया है। पहले राज्यों के चुनाव में, राज्यों से जुड़ी समस्याएं एवं राज्य स्तर पर अपनायी जानी वाली नीतियों का महत्त्व होता था। राज्यों की क्षेत्रीय विशिष्टताएं, अधिक उभर कर सामने आती थीं।

लेकिन इस बार, पांच में से चार राज्यों में चुनाव राष्ट्रीय चुनाव के समान लड़े गये। मीडिया और राजनीतिक दलों ने भी ऐसा माहौल बनाया जैसे ये चुनाव राहुल गांधी बनाम नरेन्द्र मोदी हैं। पार्टियां एवं राज्य की विशिष्टताएं, दोनों गौण हो गयीं।

इस परिवर्तन को समझने की जरूरत है। इसे पूंजीवादी विकासक्रम में आज के उसके स्वरूप के संदर्भ में देखने की भी जरूरत है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो पूंजीवाद का विकास तीन तरह के ऐतिहासिक प्रवाहों के अंतर्गत होता रहा था। सन् 1918 के पूर्व तक के दो प्रवाह थे। एक तो वह जो ''व्यक्ति-स्वातंत्र्य एवं पार्टी आधारित लोकतंत्र'' के सहअस्तित्व में विकसित हुआ। इसके मुख्य प्रतिनिधि ब्रिटेन तथा बाद में संयुक्त राज्य अमेरिका रहे। इन देशों ने वैश्विक पूंजीवाद के विकास के लिए अपने देशों को मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया। यह बात अलग है कि विश्वभर में अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए इन्होंने षड्यंत्रों एवं युद्धों का भी सहारा लिया। पूंजीवाद के विकास का दूसरा प्रवाह अस्मिता केन्द्रित था। ये अस्मिताएं राष्ट्रीय थीं, नस्लवादी थीं, धार्मिक थीं या अन्य किसी प्रकार की थीं। इनका प्रतिनिधित्व इटली एवं जर्मनी ने किया। तीसरे तरह की पूंजीवादी विकास की धारा तब प्रकट हुई जब सन् 1918 ई. में रूस में बोल्शेविक क्रांति के बाद साम्यवादी दल के एकाधिकार में राज्य-पूंजीवाद (State-capitalism) का मॉडल विकसित हुआ। आज वैश्विक पूंजीवाद का विकास तो अमरीकी मॉडल के विस्तार के रूप में ही विकसित हो रहा है। लेकिन विश्वभर के तमाम राष्ट्र-राज्यों (nation-state) में पूंजीवाद के विकास के दो अन्य मॉडलों के तत्त्व भी उभर कर आते रहते हैं।

भारत के संदर्भ में देखें तो हम पायेंगे कि 'अस्मिता-केन्द्रित पूंजीवाद' के विकास का मॉडल तथा 'व्यक्ति-स्वातंत्र्य एवं लोकतंत्र' के सहअस्तित्व में पूंजीवाद के विकास का मॉडल जिसमें राजसत्ता अपने वर्चस्व को बनाये रखने के तरह-तरह के उपाय करती रहेगी, ये दोनों मॉडल प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। कारपोरेटी पूंजीपति भी दो भागों में बंट गये हैं। इसी कारण राज्य स्तर के चुनाव भी इस रूप में ही लड़े जा रहे हैं कि विकास का कौन-सा मॉडल उनके राज्यों में अपनाया जायेगा। क्षेत्रीय एवं स्थानीय विशिष्टताओं का महत्त्व घट रहा है तथा इसके साथ ही लोकसत्ता का महत्त्व भी पीछे किया जा रहा है। राज्य-पूंजीवाद (state-capitalism) का मॉडल भी है, लेकिन भारत में उसकी शक्ति काफी कम है।

कुल मिलाकर संपूर्ण राजनीतिक वर्ग पूंजीवादी विकास के मॉडलों में से किसी एक मॉडल को बढ़ाने की लड़ाई लड़ रहा है। इसी कारण धीरे-धीरे विधानसभा चुनावों एवं लोकसभा के चुनाव के बीच मुद्दों का फर्क घटता जा रहा है। दूसरी ओर वैश्विक पूंजीवादी बाजार ने भी स्थानीय, क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक क्रियाओं के फर्क को मिटा दिया है। ऐसे में राजनीतिक वर्ग से यह अपेक्षा रखना कि वह स्वदेशी या लोक-नियंत्रण वाली अर्थव्यवस्था या राजनीतिक व्यवस्था की ओर ले जायेंगे, एक मृग-मरीचिका ही है।

अतः लोक आंदोलनों को इस परिप्रेक्ष्य में अपनी आगे की रणनीति को बनाना होगा। पहली, बात तो यह कि जो लोक आंदोलन यह रणनीति बनाते हैं कि लोक आंदोलनों के दबाव के बाद वे चुनाव लड़ेंगे व राजसत्ता के माध्यम से विकल्प का ढांचा खड़ा करेंगे, वे इस पर पुनर्विचार करें। चाहे वे दल बनाकर चुनाव लड़ें या लोक उम्मीदवार की प्रक्रिया अपनाकर चुनाव में शामिल हों, वे अपेक्षित परिवर्तन नहीं ला सकेंगे। लोकशक्ति या लोकसत्ता प्रकट करने का अभी का माध्यम केवल लोक आंदोलन एवं वैकल्पिक रचना के कार्य हो सकते हैं। असहकार एवं बहिष्कार की रणनीति लोकसत्ता को संगठित करने के अन्य आधार हो सकते हैं।

दूसरे, एक ओर व्यापक लोकतांत्रिक आंदोलन एवं दूसरी ओर जल-जंगल-जमीन व खनिज आदि को पूंजीवादी बाजार के अंतर्गत लाकर उनका दोहन करने की शक्तियों एवं संरचनाओं का विरोध व निषेध करने वाले आंदोलनों—इन दोनों आंदोलनों के बीच समन्वय बनाये रखने की भी आवश्यकता है।

तीसरे, इन जन आंदोलनों द्वारा नये समाज के निर्माण का जो संकल्प है, उस नये समाज में नये मनुष्य का निर्माण भी होगा। आंदोलन के सत्याग्रहियों की अपनी जीवनशैली में, चरित्र में उस नये विनायक की छवि भी दिखनी चाहिए।

चौथे, इन समग्र आंदोलनों के माध्यम से राष्ट्रीय एवं जागतिक निर्माण के कार्य को भी आगे बढ़ाना होगा। जय हिन्द एवं जय-जगत का उद्घोष ग्रामस्वराज्य, स्वदेशी एवं शरीर-श्रम निष्ठा से जुड़ा है, यह स्थापित कर ही हम पूंजीवादी विकास के मॉडल का विकल्प खड़ा कर सकेंगे। किसी भी स्तर के चुनावों से ये विकल्प नहीं उभर पायेंगे। बिमल कुमार

स्वराज ही देश को मजबूत बनायेगा

❑ राधा भट्ट

इस समय देश सर्वाधिक कमजोर स्थिति से गुजर रहा है। यों तो आजादी के बाद कई कठिन दौर इसने झेले हैं। बाहरी आक्रमण हों अथवा भीतर की व्यवस्था की विकट समस्याओं का उछाल हो, दोनों ही स्थितियों में कष्टपूर्ण स्थितियां आईं और कुछ समय बाद चली गईं। किन्तु वर्तमान में लोकतंत्र की गिरती दशा, राजनीतिक दलों की बदरंग होती शाख, नागरिकों के नैतिक व सामाजिक मूल्यों का ह्रास, पर्यावरणीय असंतुलन की विकट समस्यायें, अनेक प्रकार से बढ़ती हिंसा, दहशत और देश की सरहदों पर आक्रमणों के घिरते बादल, सब एक साथ जैसे इस देश को दबोच रहे हैं।

इस स्थिति को बदलने, इन समस्याओं को सुलझाने और देश को भीतर से मजबूत व बाहर से सुरक्षित रखने के अनेक प्रयास अनेक व्यक्तियों, समूहों तथा सरकारों द्वारा किये जा रहे हैं, किन्तु वे सभी प्रयास समन्वित नहीं हो पा रहे हैं अतः विभिन्न दिशाओं से आने वाली ऊर्जा या तो बिखर जा रही है या फिर आपस में टकरा कर निस्तेज हो रही है। क्या जनता हर प्रकार के आपसी भेदों को भूलकर एकजुट होकर देश को भीतर से मजबूत बना सकती है? मैं मानती हूं कि वही यह कर सकती है। जहां सरकार असफल हो जाती है वहां सफलता की आशा-किरण लोकशक्ति में ही दिखाई देती है।

उत्तराखंड में हुआ विध्वंस हमारे लिए एक सबक है। उस विनाश का जिम्मा केवल प्रकृति प्रकोप, जलवायु-परिवर्तन तथा बादल फटने पर ही नहीं थोपना चाहिए—अधिक वर्षा से आई आपदा को सौगुनी बढ़ाकर भीषण विध्वंस में बदलने में मानवकृत तथाकथित विकास सौ टका जिम्मेवार रहा है। हिमालय की अत्यन्त नाजुक व संवेदनशील रचना की छाती पर विशाल मशीनों तथा अत्यन्त शक्तिशाली विस्फोटकों से सड़कों व जल विद्युत परियोजनओं के लिए खुदने वाली सुरंगों ने इस आन्तरिक हलचलों से युक्त पर्वत की हड्डियों को हिला दिया था। सुरंगों व सड़कों के मलबे को अवैधानिक रूप से नदियों के तटों व पर्वतों के ढलानों पर बेतरतीब फेंक देने से उद्योगपति व ठेकेदारों का लाभांश तो बढ़ा परन्तु नदी में आयी बाढ़ के पानी का वौल्यूम (आकार) भी पचासों गुना बढ़ गया और उसने गांव के गांव व उन गांवों की उपजाऊ कृषि भूमि को जड़मूल से ही बहा दिया। उनके पशुधन का सम्पूर्ण विनाश हुआ। उनकी पनचक्कियों की बुनियाद भी नहीं रही। उनका अपना घर, गांव का विद्यालय, अस्पताल, पंचायतघर सभी का फिर से निर्माण करना है। ऐसे गांवों को पुनः अपनी जीवन-शैली में लौटने में दशकों लगने वाले हैं।

इस देश को कृषि प्रधान देश कहा गया है। कहा ही नहीं गया है, यह सदियों से रहा है और आज भी है। प्रकृति ने इसे कृषि के अनुकूल बनाया है, किन्तु आजाद होने के बाद सरकारों ने इस मूल कार्य की उपेक्षा ही की है। ऐसी नीतियां नहीं बनीं, जिनसे सारे देश-समाज को पालने वाला कृषक सम्मान की पहली पंक्ति में आ सकता या उसके जीवनदायी हुनर को प्रतिष्ठा मिल सकती। बड़े उद्योगों और उनके बल पर जी. डी. पी. की ग्रोथ को ही देश के निर्माण और उन्नति का एकमात्र पैमाना मान लिया गया। अतः उनकी प्राथमिकता इस हद तक आगे बढ़ाई गई कि कृषक के आधारभूत संसाधन जल, जमीन व जंगल भी उनसे छीनकर उद्योगों को सौंप दिये गये। उद्योगों का दबदबा देश को चलाने लगा और कृषक को उसकी मेहनत का उचित पारिश्रमिक भी नहीं दिया गया।

अतः कृषि व उद्योगों का संतुलन बनाने की आवश्यकता आज अनिवार्य हो गई है। यह केवल कृषक को बचाने के लिए ही नहीं, देश एवं देश की आजादी को बचाने के लिए भी अनिवार्य हो गयी है। यदि दूसरे देश का अन्न खाने की नौबत आई, इस देश की विशाल जनता को, तो देश गुलाम हो जायेगा।

जिसका भात खाना उसका गीत गाना प्रसिद्ध मुहावरा है। इसी मुहावरे के अनुसार इस देश को भी करना न पड़ जाय, अतः स्पष्टता से अध्ययनपूर्वक कृषि-भूमि को एक सीमा से आगे बड़े उद्योगों, नगरीकरण और एक्सप्रेसवे, दिल्ली-मुंबई औद्योगिक कोरीडोर जैसी योजनाओं के लिए नहीं दिया जायेगा। इस निर्णय पर भारत को आना होगा।

गांधीजी ने कहा था, मैं सात लाख सार्वभौम, सत्तासम्पन्न गांवों का भारत चाहता हूं, और यह सच है कि ऐसे सुपुष्ट गांवों के इस देश को दुनिया की कोई शक्ति हिला नहीं सकेगी। यह सबसे मजबूत डिफेन्स मेजर होगा। मैं तो यह भी देखती हूं कि नगरों के बढ़ते-विस्तृत होते कलेवर समस्याओं की जड़ है। कभी गांवों को घूरे के ढेरों से पहचानते थे तथाकथित नगरवासी। पर आज नगर कभी न सड़ने वाले कचरे के ढ़ेरों से पट गये हैं। उसी प्रकार जीवन की हर प्रक्रिया का केन्द्रीकरण नागरिक को मनुष्य की तरह जीने का अवकाश ही नहीं देता, ऐसे में एक सक्रिय, रचनामय-शांतिपूर्ण समाज बनना संभव ही नहीं होता। यह नगरीय वर्तमान शैली इनसान को इनसानियत में जीने के, मानवीय रिश्ते बनाने के लिए समय ही नहीं छोड़ती।

गांवों की ओर लौटने का वक्त आ गया। मेरा मतलब है गांवों को देशहित में मजबूत बनाने का समय आ गया है। मेहनतकशों, उत्पादकों, कृषकों, बुनकरों व कारीगरों को

प्रथम पंक्ति में लाना आज काल की पहली जरूरत बन गई है। इसके लिए सर्वप्रथम कृषक समुदाय के हाथों में उसके संसाधन। (संसाधन नहीं उसकी विरासतें) ये जल, जंगल व जमीन का अधिकार सौंप देना चाहिए, ताकि कोई उसकी जमीन छीनने के अध्यादेश पारित न करे। पैसे का लोभ दिखाकर उसे उसकी भूमि, उसके बुनियादी धरातल से न उखाड़ फेंके। उसकी नदी व भूमिगत जल से उसे वंचित न करे। वह दोयम दर्जे का नागरिक, अकुशल उत्पादनकर्ता और राष्ट्र विकास में नगण्य से धंधे का महत्त्वहीन सा व्यक्ति न रहे, वह राष्ट्र की एक अरब से अधिक जनसंख्या को जिलाने वाला अन्नदाता है। उसको वह प्रतिष्ठापूर्ण स्थान; राष्ट्र की हर नीति निर्धारण, हर योजना व हर व्यवस्था में मिलना चाहिए।

दूसरा कदम सत्ता का केन्द्र गांव व समुदाय के बीच लाना है। इसी को गांधीजी स्वराज कहते थे। इसी के लिए उन्होंने आजीवन श्रम किया, तप किया, कष्ट सहा। ब्रिटिश राज से मुक्ति स्वराज की राह के रोड़े को हटाने का एक आवश्यक कार्य था, वह अंतिम लक्ष्य नहीं था। यह देश 65 वर्षों के अन्तराल में स्वराज के उस लक्ष्य की विपरीत दिशा में दौड़ता रहा है और इसीलिए आज कठिनतम दौर से गुजर रहा है।

राजनीतिक दलों के ढांचे पर खड़ी यह शासन व प्रशासन-व्यवस्था आम आदमी से कोसों दूर पहुंच गई है। इसने लोगों की एकता की शक्ति को तोड़ा है। और उसके वोट (मत) की सीढ़ी पर पैर रखकर उसी के विरूद्ध कार्य किये हैं। पार्टियों का अत्यन्त स्वार्थी चरित्र, सत्ता के लिए अपराधिक हथकन्डे और भ्रष्टाचार तथा घोटालों के घृणित, निर्लज्जतापूर्ण कारनामें क्या अभी भी जनता का मोहभंग नहीं कर पा रहे हैं? क्या अभी भी आमजन आपस में मिलकर अपनी व्यवस्थाओं को स्वयं संभालने के लिए सर्व-सम्मति से आगे नहीं बढ़ना चाहता? क्या अभी भी अपनी आत्मशक्ति पर उनका विश्वास जागृत नहीं हो सकता?

आत्मनिर्भरता, समता, सौहार्द एवं शांतिपूर्ण समाज की रचना के लिए सर्वोदय समाज का यह सम्मेलन एक आवाज उठाये, एक कदम बढ़ाये तो हिंसा, आतंक, भ्रष्टाचार व अन्याय से पीड़ित व ऊबी हुई जनता एक दिशा पायेगी व कदम बढ़ायेगी। वह अपनी विकास नीतियां अपने धरातल के अनुरूप बनायेगी, वह स्वयं ही उत्तराखंड के विध्वंस से व उड़ीसा व आन्ध्र के 'फाइलीन' चक्रवात की त्रासदी से मुक्ति पायेगी। और गांधी के अधूरे सपने यानी स्वराज को जीवन में उतारेगी। अब हमारे देश की आजादी के ये अगले तीन दशक यदि गांधी की इस दिशा में बढ़ें तो जब देश अपनी आजादी की सौवीं वर्षगांठ मनायेगा तब देश का एक भी मानव रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा व स्वास्थ्य की समानतापूर्ण लगभग एक सी गुणवत्ता वाली सुविधा से महरूम नहीं होगा। और यह सब वह अपने आत्मसम्मान व प्रतिष्ठा के साथ स्वयं अर्जित करेगा, वह एक किलो सस्ते चावल के लिए भिखमंगा नहीं बनेगा। वह अपने 'स्वराज' को स्वयं चलायेगा।

बस, एक ही लक्ष्य, एक ही दिशा व एक ही राह 'स्वराज'। हर जन, हर स्त्री-पुरुष का स्वराज, हर गांव का स्वराज तथा हर नगर का स्वराज। यही स्वराज इस देश को मजबूत बनायेगा। ❑

❑ *अध्यक्षा, सर्व सेवा संघ*

गांधी और गांधीवादियों में मूलभूत फर्क

दुनिया का हर आदमी यही कहता है कि यह संसार इसी तरह दुःसाध्य एवं दुराराध्य है। यानी प्रत्येक व्यक्ति की शिकायत दूसरे प्रत्येक व्यक्ति के खिलाफ है। या यों कहें कि हर एक की शिकायत दूसरे सब लोगों के खिलाफ है। इसका मतलब यह होगा कि मनुष्य व्यक्तिशः सत्प्रवृत्त एवं सदाकांक्षी है, लेकिन वह समूहशः असत्-प्रवृत्त एवं असदाकांक्षी है! लेकिन यह भी सही नहीं है। सवाल सिर्फ दृष्टि में परिवर्तन करने का है। 'दुनिया बुरी है, इसलिए मुझे बुरा बनना पड़ता है', ऐसी शिकायत आज हर कोई करता है। उसके बजाय अगर प्रत्येक व्यक्ति यह संकल्प करे कि 'दुनिया चाहे जैसी चले, लेकिन मैं तो नेकी से और प्रेम से चलूंगा', तो दुनिया का कायाकल्प होगा। इसी को बापू हृदय-परिवर्तन का तत्त्व कहते थे। गांधीवादी कहता है, 'मैं तराश-क्षराश कर दूसरों के स्वभाव को पूरा मुलायम बना दूंगा।' बापू कहते थे, 'मैं पहले अपने स्वभाव के दोषों को दूर करूंगा।'

ट्रॉट्स्की ने कहा था कि जब चारों तरफ पूंजीवाद का साम्राज्य फैला हुआ हो, तब अकेले रूस में समाजवादी राज की स्थापना संभव नहीं है। स्टैलिन कहता है कि समाजवादी राज का प्रारंभ तो किसी भी एक देश में हो सकता है। वह प्रारंभ रूस ही करे। 'जबकि सभी लोग खुलेआम अशुद्ध साधनों का प्रयोग करते हैं, तो केवल हमारे ही साधन-शुद्धि के आग्रह से कैसे चलेगा?' इस आक्षेप के उत्तर में गांधीजी कहते थे कि साधन-शुद्धि का प्रारंभ कोई भी कर सकता है—'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।' 'साधन कैसा भी हो, हेतु शुद्ध रहे तो काफी है,' इससे अधिक भयावह तथा अवनतिकारक तत्त्वज्ञान दूसरा कोई नहीं है। इस तत्त्वज्ञान से दुनिया में अनवस्था ही केवल नहीं, बल्कि आसुरी वृत्ति का भी साम्राज्य फैल जायेगा।

('सर्वोदय' मासिक पत्रिका, 15 अगस्त, 1952 से) **–दादा धर्माधिकारी**

दक्षिणी एशिया में 'सत्याग्रह-दर्शन' की प्रासंगिकता

❑ बाबूराव चन्दावार

भारतीयों के लिए हिमालय सदियों से 'मोक्षधाम' रहा है। ऋषि-मुनियों के लिए वह तपस्या का स्थान भी रहा है। गंगोत्री तथा यमुनोत्री, गंगा-यमुना दो पवित्र मानी गयी नदियों के उद्‌गम-स्थान हिमालय ही है। इनके किनारों के भूप्रदेश पर भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ है। हिमालय ही हिन्दू आस्था का पवित्र तीर्थ स्थल बद्री-केदारनाथ का कुछ हिस्सा बाढ़ में डूब गया था और कुछ हिस्सा बाढ़ से घिरा रह गया था। इसलिए हिन्दू दर्शनार्थी बद्री-केदारनाथ के दर्शन से महीनों वंचित रह गये। अब बद्री-केदारनाथ तथा हिमालय में बसे पवित्र तीर्थस्थलों का दर्शन कर पाना पूर्ववत स्थिति बन जाने से संभव हो गया है। हिमालय में बाढ़ पीड़ित हजारों लोगों की मृत्यु हो गयी। इस तबाही की दर्दभरी कहानी बन गयी है। इसे मात्र प्रकृति की विपदा से बनी कहानी ही कहना उचित नहीं होगा। क्योंकि आयातीत योजनाओं एवं परियोजनाओं ने हिमालय में आक्रमण, प्रदूषण तथा आपदाओं की स्थिति पैदा कर दी है, जिसके चलते माना जा रहा है कि हिमालय टूट रहा है। हिमालय क्षेत्र में बसे लोगों के कई छोटे राज्य बने हुए हैं जो भारत के ही राज्य हैं। भारत के समीप स्वतंत्र राष्ट्र भी है जिसमें चीन के नियंत्रण में गया हुआ तिब्बत भी है तथा स्वतंत्र नेपाल एवं स्वतंत्र भूटान, दोनों भारत की सीमा से सटे हुए पड़ोसी राष्ट्रों में ही गिने जाते हैं। भारत में समाया हुआ सिक्किम भी भारत का ही एक राज्य है जो कुछ वर्षों पूर्व तिब्बत की तरह स्वतंत्र रहा था। इस तरह हिमालय का वह स्वरूप बना हुआ है जो पड़ोसी सामर्थ्यशाली चीन-राष्ट्र की विस्तारवादी नीतियों के चलते भारत-चीन सीमा-विवाद वर्षों से विस्फोटक बना हुआ है। भारत-चीन सीमा-विवाद ने नेपाल तथा भूटान पर अपना अनुचित असर डाला हुआ है, जिससे भारत और चीन का तिब्बत पर बेरोक अपना अधिकार जमा लेने से बौद्ध धर्मगुरु दलाईलामा तथा उनकी मंत्री परिषद एवं सभी बौद्ध धर्मावलंबी साथी-सहयोगी हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला में विस्थापित होकर (भारत में) ही शरणार्थी बनकर रहने लगे हैं। तिब्बत अब चीन का ही एक हिस्सा बनकर रह गया है। इसके लिए एक अरसा बीत चुका है। इससे भारत का हिमालय के प्रति अपनी कोई नीति होनी चाहिए, माना जा रहा था, उसका कोई स्पष्ट स्वरूप अब तक नहीं बन पाया है। परिणामस्वरूप नेपाल में राजशाही का अंत करने के बाद राजशाही के विरोध में नेपाल के माओवादियों द्वारा लोक-विद्रोह को उभारा गया, जिससे राजशाही का अंत हो गया है। लोक-विद्रोह को संगठित करने का श्रेय नेपाली माओवादियों को ही मिला है जिससे नेपाल में माओवादी प्रभावी हो गये हैं। अर्थात् नेपाल में माओवादी ही सत्ता के दावेदार बने हुए हैं और उनकी मर्जी से ही शासन करने वालों की राजनीति चलने भी लगी है। इस राजनीति ने स्वतंत्र भूटान पर माओवादियों के पक्ष में असर भी डाला है। वैसे भूटान अभी तिब्बत या उसी तरह का बौद्ध राष्ट्र ही है। लेकिन जो स्थिति आज तिब्बती बौद्धों की है, अनुमान लगाया जा रहा है कि भूटान बौद्ध राष्ट्र भी उसी तरह चीन के नियंत्रण में चला जा सकता है। इसकी कोई रणनीति चीन ने अवश्य बनायी होगी। इसके संकेत नेपाल में जो माओवादी राजनीति चलायी जा रही है उसके द्वारा मिलने लगे हैं। हिमालय के प्रति भारत की कोई भी स्पष्ट नीति नहीं बन पाने के कारण नेपाल-भूटान जैसे पड़ोसी राष्ट्रों के संबंधों में जटिलता आने के अवसर बने हुए हैं। ''संविधान सभा के जरिये नये संविधान का निर्माण ही नेपाल की भावी राजनीति को सकारात्मक दिशा दे सकता है।'' इसे नेपाल के राजनैतिक गतिविधियों के विश्लेषक कहते आये हैं।

उत्तर बिहार नेपाल की सीमा से सटा हुआ है तथा सुपौल, मधेपुरा, सहरसा आदि बिहार के जिलों पर नेपाल से आपसी एवं पारिवारिक संबंधों के चलते उत्तर बिहार में जो हलचल मचेगी, उसका क्या स्वरूप बनेगा, कह नहीं सकते। वैसे नेपाल के माओवादी तथा भारत के नक्सली-माओवादियों के बीच एक सीमा तक संबंध बने हुए हैं। माओवादी आंदोलन को भारत में फैलाने के उद्देश्य से विचारों का आदान-प्रदान भी हो ही रहा है। इसके संकेत नेपाल-बिहार के सीमाक्षेत्र के लोकजीवन में दिख रहे हैं। इसलिए एक तरफ आयातीत योजनाओं एवं परियोजनाओं ने हिमालय में आक्रमण, प्रदूषण तथा आपदाओं की स्थिति पैदा करके रखी है, जिससे हिमालय टूट रहा है। दूसरी तरफ हिमालय में स्थित तिब्बत, नेपाल-भूटान की राजनैतिक गतिविधियों के चलते वहां का लोकजीवन चीन के विस्तारवाद से प्रभावित होकर ही पूरी तरह से उसके नियंत्रण में चले जाने की संभावना बन सकती है। इसका सीधा परिणाम भारत के बिहार पर नक्सली-माओवादियों द्वारा किया ही जा सकता है। इस स्थिति में हिमालय के लिए भारत द्वारा सुनियोजित नीति अपनाया जाना जरूरी हो गया है।

नेपाल में राजशाही का अंत हो जाने के बाद जो राजनैतिक धाराएं उभरी हैं, उनमें तीन ऐसे हैं जो नेपाल में संविधान के गठन हेतु सक्रिय हुए देखे जा रहे हैं। नेकपा (माओवादी) दो हिस्सों में बंटा हुआ है। एक हिस्सा कॉमरेड प्रचंड के नेतृत्व में संगठित हुआ है। दूसरे हिस्से का नेतृत्व कॉमरेड किरण करते हैं। इनकी गतिविधियां माओवादी क्रांति की सोच को लेकर भिन्न दृष्टिकोणों के बीच टकराव पैदा हो जाने से संघर्षशील अवस्था से इस समय गुजर रहे हैं। इनके अलावा मधेशियों का एक हिस्सा है जो माओवादियों से हटकर अलग है। नेपाल के संदर्भ में

भारत की भूमिका के पक्ष में उसका झुकाव हो गया-सा दिखने लगा है। नेपाली कांग्रेस आदि संगठनों को निर्णायक बन पाने की क्षमता नहीं के बराबर है। इसलिए माओवादियों के दो हिस्सों में जो गतिविधियां चलायी जा रही हैं वह सब महत्त्वपूर्ण बनी हुई हैं जिनमें मधेशी भी अपने को प्रभावी हिस्सेदार मानते हैं।

इधर सुस्मिताजी का 'ब्लैक हिल्स से बस्तर तक' शीर्षक से 'समकालीन तीसरी दुनिया' के सितंबर, 2013 मासिक अंक में आलेख प्रकाशित किया गया है। इसमें कहा गया है कि ''...विकल्पहीनता की स्थिति में माओवादियों का संघर्ष जनता के सामने एक विकल्प के रूप में उभरा है।'' भारत के कुछ राज्यों में जिस संघर्ष को माओवादियों ने छेड़ रखा है, जिसके चलते छत्तीसगढ़ में उसका जो स्वरूप उभरा है, उसका महत्त्वपूर्ण दिग्दर्शन भी इस आलेख में किया गया है। इसलिए इसे सैद्धांतिक तथा वैचारिक कसौटी पर कसना भी आवश्यक हो गया है।

''...प्रतिरोध की बहस में उलझना न केवल इतिहास के अनुभवों को नकारना है बल्कि शासक वर्ग के साथ ही खड़ा होना है। जहां तक प्रतिरोध में हिंसा का सवाल है तो हिंसा प्रकृति में ही निहित है। मानव अस्तित्व का सवाल भी इस प्राकृतिक हिंसा के प्रतिरोध से जुड़ा हुआ है। मानव विकास का सिद्धांत हमें बताता है कि जो भी जीव प्राकृतिक हिंसा का प्रतिरोध करने में विफल रहे हैं, उनका अस्तित्व ही खतम हो गया। साम्राज्यवादी लूट और बड़े पूंजीवादियों के हित में छेड़े गये इस युद्ध को प्रतिरोध की बहस में उलझाना न केवल साम्राज्यवादी ताकतों के मंसूबों को सफल बनाने के बराबर होगा, बल्कि प्रतिरोध को ही नष्ट कर देने के बराबर होगा।''

उपर्युक्त सुस्मिताजी का कथन या विश्लेषण सिद्धांत एवं वैचारिकता की संकीर्णता में उलझा देने वाला ही किसी ने यदि मान लिया, तो उसका समाधान पता नहीं किस तरह से किया जा सकता है। आलेख जिस दृष्टिकोण से लिखा गया है, उससे भिन्न दृष्टिकोण से सोचने वालों का भी कुछ अभिप्राय हो ही सकता है, उसे समझ लेना होगा। इस दृष्टि से ही विचार-भिन्नता या मतभिन्नता को यहां धैर्य के साथ प्रस्तुत करने का सोचा भी है।

हिंसा प्रकृति में ही निहित है मानकर ही प्रतिरोध के लिए हिंसा को अपना लेने का समर्थन नहीं किया जा सकता। क्योंकि 1917 में जो रूस में बोल्शेविक क्रांति हुई, उसका लक्ष्य कार्लमार्क्स ने क्रांति के सैद्धांतिक तौर पर प्रस्तुत किया है, उसे प्रतिष्ठित करने का ही था। दुनिया में जो हिंसा हो रही है उसे मिटाने का संकल्प कम्युनिज्म का है, कहा भी गया था।

शोषणविहीन तथा शासनहीन सामाजिक रचना या सामाजिक स्थिति बनाने के लिए ही यदि क्रांति का प्रयोजन माना गया हो तो उसकी परिपूर्ति करना अनिवार्य माना जायेगा। रूस में हुई बोल्शेविक क्रांति के पश्चात जो स्थिति बनी या व्यवस्था बनायी गयी वह शोषणविहीन तथा शासनहीनता की नहीं हो पायी। तानाशाही की ही व्यवस्था रूस में बन पायी। इसे श्रमजीवी वर्ग की अंतरिम तानाशाही की व्यवस्था ही माना गया। 'अंतरिम व्यवस्था' समाप्त होकर शोषणविहीन शासनहीन व्यवस्था की दिशा में उसकी प्रक्रिया चलाते हुए आगे बढ़ना संभव हो सकता है। उसकी पूर्ति नहीं हो पायी। राज्यसत्ता पिघलते जाने की (स्टेट विल विदर अवे) की प्रक्रिया कम्युनिज्म में चल पायेगी माना गया था, शुद्ध साध्य पाने के लिए उसके साधन भी उतने ही शुद्ध होने चाहिए, इसे महात्मा गांधी ने कहा था। इसे उन्होंने 'सत्याग्रह सिद्धांत' द्वारा प्रस्तुत किया था। बोल्शेविक क्रांति से हटकर नये विकल्प की खोज करने में महात्मा गांधी लगे हुए थे जिसमें से 'सत्याग्रह दर्शन' प्रस्तुत करना उन्हें संभव हो पाया। भारत के स्वाधीनता आंदोलन में 'सत्याग्रह दर्शन' की सफलता एवं विफलता दोनों को जानना संभव हो सकता है। स्पष्ट है कि हिंसा को प्रतिरोध के लिए अनिवार्य हिंसा मान लेना 'सत्याग्रह दर्शन' में संभव नहीं हो सकता है। क्योंकि हिंसा प्रकृति में ही निहित है माना ही नहीं जा सकता है। अर्थात् 'सत्याग्रह दर्शन' इसे मानने के लिए किसी भी तर्क को अनुमति नहीं दे सकता। क्योंकि प्रकृति में सर्जन के साथ विसर्जन भी है। सर्जन एवं विसर्जन के बीच 'कालांतर' है जिसे 'आयु' कहा गया है। इसलिए सर्जन के बाद विसर्जन तक के 'कालांतर' में जी लेना या जीना ही सृष्टि का नियम माना गया है। इसमें कहीं भी हिंसा की कोई भूमिका बनती ही नहीं है। 'स्नेहवर्धन' करते रहना ही अस्तित्व बनाये रखने के लिए अनिवार्य उपाय है। क्योंकि एक-दूसरे को स्नेह देते रहने से ही वह मिलता है, जिसके द्वारा 'सहअस्तित्व' बनता है। 'सहअस्तित्व' के लिए 'स्नेहवर्धन' करते रहना ही अनिवार्य है; प्रतिरोध की हिंसा द्वारा 'स्नेहवर्धन' में बाधाएं आती रहती हैं जिनमें 'सहजीवन' संभव नहीं है। दुनिया के लोकजीवन का भविष्य सहअस्तित्व के कारण ही बनता है। प्रतिरोध की हिंसा सहअस्तित्व के काम नहीं आती है। 'सत्याग्रह दर्शन' में सहअस्तित्व की प्रेरणा जगाते रहने एवं उसे अक्षुण्ण करने की जिज्ञासा है, इसीलिए अपराध कर्मों से मुक्त रहने की वास्तविकता इसके द्वारा ही संभव है। माओवाद प्रतिरोध की हिंसा को अपनाकर यदि आगे बढ़ना चाहेगा तो वह अपराध कर्मों में ही फंसता जायेगा, इसमें संदेह नहीं। जो 'सत्याग्रह दर्शन' को मानते हैं उनके लिए माओवादियों को अपराध कर्मों से मुक्त रखना ही दायित्व बनता है। दुनिया में शोषण प्रक्रिया बेरोक चल रही है उससे दुनिया के लोगों को मुक्ति दिलाने का उपाय 'सत्याग्रह दर्शन' द्वारा ही किया जाना चाहिए। अर्थात् प्रतिरोध की हिंसा अपनाने के लिए अवसर नहीं बने इसका दायित्व 'सत्याग्रह दर्शन' को अपनाकर उसकी प्रक्रिया तेज करके ही निभाया जा सकता है जिसका इस समय अभाव है।

इसलिए माओवादी गतिविधियां यदि 'सत्याग्रह दर्शन' की दिशा में मुड़ जाती हैं,→

गतांक से आगे

सदियों पुरानी है भारत की मिलीजुली विरासत

❑ राम पुनियानी

स्वाधीनता आंदोलन : 19वीं सदी में शुरू हुए स्वाधीनता आंदोलन की प्रतिक्रियास्वरूप, समय के साथ, मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा का जन्म हुआ। इन दलों के साम्प्रदायिक एजेन्डे को लागू करने के लिए अन्य कई संगठन बने। हिन्दूत्व के पाले में आर् एस्. एस्. ने मोर्चा संभाला और इस्लाम की ओर से जमायत-ए-इस्लामी ने। इन साम्प्रदायिक संगठनों के सदस्य समाज के श्रेष्ठि वर्ग से आए थे और वे कमजोर और निर्धन वर्गों की संस्कृतियों को नीची निगाहों से देखते थे। उनकी दृष्टि में दलित और अजलफ दूसरी श्रेणी के नागरिक थे। साम्प्रदायिक ताकतों ने नीची जातियों को अपने झंडे तले लाने के लिए कई प्रयासों के हिस्से थे। स्वतंत्रता आंदोलन के कई नेता भी समाज के श्रेष्ठि वर्ग के थे परंतु स्वाधीनता आंदोलन, धर्मनिरपेक्षता और बहुवाद के मूल्यों में आस्था रखते थे तथा सभी धर्मों और संस्कृतियों को बराबरी का दर्जा देते थे। डॉ. अंबेडकर जैसे समाज सुधारकों ने स्वाधीनता आंदोलन को व्यापक आधार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जहाँ स्वाधीनता आंदोलन सभी को साथ लेकर चलने का हामी था वहीं साम्प्रदायिक संगठनों की सोच अत्यंत संकुचित थी।

भारत की सांस्कृतिक विविधता के बावजूद स्वाधीनता आंदोलन पूरे देश को एक राजनैतिक मंच पर लाने में सफल रहा। साम्प्रदायिक संगठनों और उनकी नीतियों को जनता ने कभी तरजीह नहीं दी परंतु ये संगठन भारत के विभाजन की नींव रखने में कामयाब हो गए। अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' नीति ने उनकी मदद की।

भारतीय संविधान : भारतीय संविधान ने राष्ट्र निर्माण के महती कार्य को संपन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वतंत्र भारत के जन्म के समय दुनिया पर दो महाशक्तियों का प्रभुत्व था। समय के साथ दुनिया में कई परिवर्तन आए। विभिन्न देशों में स्वाधीनता आंदोलन शुरू हुए। गुटनिरपेक्ष आंदोलन की नींव पड़ी। भारत ने शनैः शनैः अपनी जनता के जीवन को बेहतर बनाने में सफलता पाई। भारत में सभी धर्मों और संस्कृतियों को फलने-फूलने का मौका दिया गया।

विभाजन ने मुस्लिम अल्पसंख्यकों की मुश्किलें बढ़ा दीं। राज्य की नीतियों और नौकरशाही के पूर्वाग्रहों के कारण अल्पसंख्यक समाज हाशिए पर खिसक गए। उनके विरूद्ध हिंसा में बढ़ोतरी हुई, उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में गिरावट आई और मानसिक व भौतिक-दोनों तरह से अपने में सिमट गए। इससे भारत की साझा संस्कृति व सभी धर्मों और संस्कृतियों को बराबर दर्जा देने की परंपरा को आघात पहुंचा।

अपने देश से प्यार करने वाला शायद ही कोई संवेदनशील भारतीय होगा जिसके अंतर्मन को मुंबई, गुजरात, कंधमाल आदि में हुई हिंसा ने बुरी तरह झकझोरा न हो। इस सांप्रदायिक हिंसा ने हजारों निर्दोष पुरुषों, महिलाओं व बच्चों के जीवन पर असमय विराम लगा दिया। इस हिंसा की आग में अरबों रुपये की सार्वजनिक व निजी संपत्ति स्वाहा हो गई। इसने हमारे देश की अंतर्धार्मिक एकता व सांप्रदायिक सद्भाव की सदियों पुरानी परंपरा को आहत किया।

सांप्रदायिक हिंसा से जो पीड़ित जीवन बच गए, वे इसी धरती पर नर्क भोग रहे हैं। असहाय और अपमानित, वे शरणार्थी शिविरों में अपने दिन काट रहे हैं। जो अपने घर-गांव में हैं भी, उनका न तो सामाजिक पुनर्वास हुआ है और न ही आर्थिक।

सांप्रदायिक हिंसा : सांप्रदायिक हिंसा विभाजन के समय से लेकर आज तक अनवरत जारी है। इसने भारतीय उपमहाद्वीप के दोनों प्रमुख धार्मिक समुदायों के बीच गहरी खाई खोद दी है। सांप्रदायिक हिंसा में अपनी जान गंवाने वालों का एकमात्र दोष यह होता है कि वे इस या उस धर्म में आस्था रखते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप का कोई ऐसा धर्म नहीं है जिसके अनुयायी कभी न कभी,कहीं न कहीं हिंसा के शिकार न हुए हों। इस

→तो क्रांति की विशुद्ध भूमिका अपनाने के लिए माओवादी तैयार हो सकते हैं।

हिमालय की जो स्थिति बनी हुई है, उसमें दुनिया की महाशक्तियों को अपने प्रभुत्ववाद का विस्तार करने के लिए इस समय अवसर बने हुए हैं। इस प्रभुत्ववाद का एक स्वरूप हिमालय में आयातीत योजनाओं एवं परियोजनाओं के आक्रमण, प्रदूषण तथा आपदाओं द्वारा बनाया हुआ दिखायी दे रहा है। इसका दूसरा स्वरूप प्रतिरोध की हिंसा को ही अपनाकर हिमालय में छोटे राज्यों तथा राष्ट्रों में माओवाद को फैलाते रहने का है। इससे भारत प्रभावित हो सकता है। दक्षिण एशिया के राष्ट्रों का जनजीवन भी प्रभावित होने की संभावना भी है। क्या इससे दक्षिणी एशिया के लोगों में शांतिमय, सहजीवन संभव हो पायेगा? ❑

* डी-1, 13, सईनगर, सिंहगढ़ रोड, पुणे-411030 (महाराष्ट्र), फोन : 020-24250693

उपमहाद्वीप का कोई ऐसा देश नहीं है, जो सांप्रदायिक हिंसा से सर्वथा मुक्त हो। पाकिस्तान में हिन्दू और ईसाई, भारत में मुसलमान और ईसाई व बांग्लादेश में हिन्दू, प्रतारणा प्रताड़ित व हिंसा के शिकार होते रहे हैं। मानवता को कलंकित करने वाली इस हिंसा के दोषियों को शायद इतना क्रूर, इतना वहशी बना देते हैं कि वे किसी बेकसूर का खून बहाने पर सिर्फ इसलिए आमादा हो जाते हैं क्योंकि उसका धर्म, दूसरे के धर्म से अलग है।

इस वहशीपन के पीछे धर्म तो कतई नहीं हो सकता। सभी धर्म नैतिक व्यवहार पर जोर देते हैं और मानवीय मूल्यों को सबसे ऊँचे पायदान पर रखते हैं। क्या हिन्दू धर्म नहीं कहता कि पूरी पृथ्वी हमारा परिवार है (वसुधैव कुटुम्बकम)? क्या ईसाई धर्म हमें अपने पड़ोसी से प्यार करना (लव दाई नेबर) नहीं सिखाता? क्या इस्लाम हमें अपने समुदाय की आवश्यकताओं का खयाल रखने की प्रेरणा नहीं देता?

नफरत की तिजारत : अल्पसंख्यकों के खिलाफ हिंसा के पीछे धर्म नहीं बल्कि अन्य कारण होते हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है, अल्पसंख्यकों के विरुद्ध घृणा का वातावरण बनाया जाना।

अल्पसंख्यकों के बारे में मिथक फैलाए जाते हैं। ये मिथक, अर्धसत्यों व सफेद झूठों का मिश्रण होते हैं। इन मिथकों के जरिए अल्पसंख्यकों को ''अलग'', ''दूसरा'' व ''दुश्मन'' निरूपित किया जाता है। उनके विरुद्ध क्रूरता को औचित्यपूर्ण ठहराया जाता है।

इन मिथकों के जरिए ऐसा भ्रम उत्पन्न किया जाता है मानो एक धर्म के सभी लोग एक से होते हैं। सच इसके विपरीत है। असल में हर धर्म में अलग-अलग प्रकृति के लोग होते हैं। क्या एक धनी हिन्दू और एक गरीब हिन्दू एक तरह से सोचता है? क्या एक उच्च शिक्षित मुसलमान व एक अनपढ़ मुसलमान की मानसिकता व जीवनशैली एक सी होती है? क्या सभी मुसलमान एक से कपड़े पहनते और एक सा खाना खाते हैं? क्या सभी हिन्दू एक ही भाषा बोलते हैं और एक ही प्रकार से पूजा करते हैं? क्या सभी हिन्दुओं के कम बच्चे होते हैं? क्या सभी ईसाई हर रविवार को चर्च जाते हैं? क्या सभी जैन सूरज डूबने के बाद खाना नहीं खाते?

मिथकों की धुंध : जैसे पाकिस्तान में हिन्दुओं व ईसाइयों के बारे में तरह-तरह की आधारहीन मान्यताएं प्रचालित हैं, उसी तरह भारत में भी मुसलमानों व ईसाइयों के विरुद्ध मिथकों की भरमार है। हम में कई मानते हैं कि मुसलमानों की चार-चार पत्नियां होती हैं, वे ढेर सारे बच्चे पैदा करते हैं और वे पाकिस्तान के प्रति वफादार हैं। हम में से कुछ यह भी मानते हैं कि भारत में तलवार की नोंक पर इस्लाम फैलाया गया और मुसलमान बादशाहों ने हिन्दुओं को नीचा दिखाने के लिए दर्जनों हिन्दू मंदिरों को जमींदोज कर दिया। क्या हम कभी अपनी इन मान्यताओं के बारे में गहराई से सोचते हैं? क्या हम कभी इन्हें तर्क की कसौटी पर कसते हैं? ये भ्रम, ये मिथक, ये अफवाहें ही दोनों समुदायों को एक-दूसरे से दूर करती हैं, उनके बीच संदेह की दीवार खड़ी करती हैं। यही अलगाव, यही संदेह, धीरे-धीरे घृणा में बदल जाते हैं और यहां तक कि जब उस समुदाय के निर्दोषों का खून बहता है,तब भी हमें गुस्सा नहीं आता, हमें दुःख नहीं होता बल्कि मन ही मन हम कहते हैं कि चलो, अच्छा हुआ।

मंदिरों का विध्वंस : राजा, मंदिर और मस्जिदें क्यों गिराते थे? क्या वे अपने धर्म प्रेरित होते थे? क्या वे दूसरे धर्मों के मानने वालों को अपमानित करना चाहते थे?

ग्यारहवीं सदी के कवि कल्हन अपनी पुस्तक ''राजतरंगिणी'' में लिखते हैं कि राजा हर्षदेव के दरबार में भगवान की मूर्तियां उखाड़ फेंकने के लिए एक विशेष अधिकारी था, जिसे ''देवोत्पतन नायक'' कहा जाता था। जब गोलकुंडा के नवाब ने मुगल बादशाह औरंगजेब को तीन साल तक वार्षिक नजराना नहीं चुकाया तो औरंगजेब ने गोलकुंडा की मस्जिद तोड़वा दी। जब मराठा सेनाएं, टीपू सुल्तान पर विजय प्राप्त नहीं कर सकीं तो खीझ कर और टीपू को नीचा दिखाने के लिए, मराठों ने श्रीरंगपट्टनम् के मुख्य मंदिर को गिरा दिया। अपने हिन्दू प्रजाजनों की भावनाओं का आदर करते हुए, टीपू ने उस मंदिर को फिर से बनवाया। गजनी ने सोमनाथ के मंदिर की संपत्ति लूटने के लिए गिराया था। अगर गजनी को बुतपरस्ती से सचमुच सख्त नफरत होती तो क्या वह बामियान की विशाल बुद्ध प्रतिमा को छोड़ देता? आखिर गजनी के रास्ते में सोमनाथ से बहुत पहले बामियान पड़ा होगा। गजनी की सेना के एक-तिहाई सिपाही हिन्दू थे और उसके 12 सिपाहसालारों में से भी 5 हिन्दू थे।

शिवाजी और राणा प्रताप : इन दोनों शासकों ने मुगल बादशाहों के विरूद्ध लंबी व कठिन लड़ाई अत्यंत साहस से लड़ी। परंतु इन लड़ाइयों की जड़ में धर्म नहीं था। राणा प्रताप की सेना का हर तीसरा सिपाही मुसलमान था और उनके प्रमुख सलाहकार व साथी का नाम था हकीम खान सूर। यह लड़ाई उस दर्जे के लिए थी, जो राणा प्रताप पाना चाहते थे और अकबर ने उन्हें नहीं दिया। बाद में जहांगीर ने वही दर्जा राणा प्रताप के पुत्र अमर सिंह को दे दिया। उसके बाद, जहांगीर व अमर सिंह के बीच कभी युद्ध नहीं हुआ। बल्कि, उनमें गठबंधन हो गया।

साझी विरासत : साम्प्रदायिकता का

चश्मा लगाकर इतिहास को पढ़ने-समझने से भारत की लंबी साझी विरासत और उसकी मिली-जुली संस्कृति हमारे दृश्यपटल से गायब हो जाती है। हमारे देश में हिन्दुओं व मुसलमानों के आपसी मेलमिलाप से ''गंगा-यमुनी तहजीब'' उभरी। इस तहजीब की झलक हमारे खानपान, संगीत, बोल-चाल, वास्तुकला सहित जीवन के हर पक्ष में देखी जा सकती है। जैसे हमने ऊपर देखा हिन्दू भक्ति संतों और मुस्लिम सूफियों ने अपनी उदारवादी शिक्षाओं के जरिए दोनों समुदायों के बीच सेतु का काम किया। प्रेम व भाईचारे के उनके संदेश ने करोड़ों लोगों के दिलों में जगह बनाई। कई सूफी संतों ने स्थानीय भाषाओं-बोलियों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। बाबा फरीद की पंजाबी कविताएं इसका उदाहरण हैं। भक्ति व सूफी संतों ने आमजनों, विशेषकर गरीबों व वंचितों के बीच अंतर्धार्मिक एकता स्थापित करने में उल्लेखनीय सफलता पायी।

अंग्रेजों ने अपनी ''फूट डालो और राज करो'' की नीति के तहत इतिहास का सांप्रदायिकीकरण किया था। पाकिस्तान में भी इतिहास का ऐसा ही सांप्रदायिक संस्करण प्रचलित है। फर्क बस इतना है कि वहां के इतिहास की पुस्तकें मुस्लिम शासकों का महिमा मंडन करती हैं और हिन्दू राजाओं के मुंह पर कालिख पोतती हैं।

इस्लाम की शमशीर : क्या हम जोर-जबरदस्ती से किसी का दिल जीत सकते हैं? चूंकि धर्म, आस्था से जुड़ा है इसलिए निश्चित तौर पर उसका संबंध व्यक्ति के दिल से है।

सम्राट अशोक को छोड़कर, भारत के किसी शासक का लोगों का धर्मपरिवर्तन करवाने में कोई रुचि नहीं थी। धर्मपरिवर्तन मुख्यतः, वे गरीब, नीची जातियों के अछूत करते थे जो कहने को तो हिन्दू थे परंतु अपने ही धर्मावलंबियों के शोषण व दमन के शिकार थे-जिनका जीवन दासों जैसा था। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में, ''आखिर क्या कारण है कि भारत के निर्धन वर्ग में मुसलमानों की बड़ी संख्या है? यह कहना कोरी बकवास है कि उन्हें तलवार की नोंक पर मुसलमान बनाया गया था। वे तो जमींदारों और पंड़ितों-पुरोहितों के चंगुल से निकलने के लिए इस्लाम धर्म में गये'' (कलेक्टिड वर्क्स, पृष्ठ 330) अधिकांश धर्मपरिवर्तनों के पीछे राजसत्ता की ताकत नहीं बल्कि सूफी संतों का मानवता व प्रेम का संदेश था। सामाजिक न्याय की तलाश में नीची जातियों के शूद्रों ने इस्लाम, सिक्ख और बौद्ध धर्म को अंगीकार किया।

मिशनरियों का हौव्वा : इन दिनों, कुछ लोग ढ़ोल पीट पीटकर चिल्ला रहे हैं कि ईसाई मिशनरियाँ धोखाधड़ी, लालच व जोर-जबर्दस्ती से हिन्दुओं को ईसाई बना रही हैं। क्या तथ्य, इस आरोप को सिद्ध करते हैं? कतई नहीं। भारत की आबादी में ईसाइयों के प्रतिशत में लगातार गिरावट आ रही है। सन् 1971 में वे आबादी का 2.34 प्रतिशत और 2001 में 2.30 प्रतिशत (सभी आंकड़े जनगणना से) जो पार्टियां व संगठन, आदिवासी क्षेत्रों में मिशनरियों को जीना हराम किए हुए हैं, उन्हीं पार्टियों व संगठनों के नेता अपनी संतानों को शहरों के मिशनरी स्कूलों में दाखिला दिलाने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाते हैं। पॉस्टर ग्राहम स्टेन्स और उनके दो मासूम बच्चों को जिंदा जला दिए जाने की लोमहर्षक घटना की जाँच के लिए नियुक्त वाधवा आयोग की रपट कहती है कि न तो स्टेन्स धर्मपरिवर्तन करवा रहे थे न ही जिस इलाके में वे काम करते थे, वहां धर्मपरिवर्तन संबंधी कोई गतिविधि हो रही थी।

चार बीबियां, बीस बच्चे : भारत में हर 1000 पुरुषों पर 932 महिलाएं हैं (जनगणना 2001) फिर भला कोई मुस्लिम पुरुष, चार बीबियां कहां से लायेगा? देश के अलग-अलग क्षेत्रों और अलग-अलग सामाजिक-आर्थिक तबकों में मुस्लिम परिवारों का स्वरूप अलग-अलग है। केरल के मुस्लिम परिवार छोटे होते हैं। पढ़े-लिखे मुसलमान परिवारों में भी कम बच्चे होते हैं। इसके विपरीत, दलितों व गरीब वर्गों के दंपत्ति अधिक संख्या में बच्चों को जन्म देते हैं। मूल बात यह है कि परिवार का आकार, उसके धर्म पर निर्भर नहीं करता बल्कि उसके सामाजिक-आर्थिक-शैक्षणिक स्तर से निर्धारित होता है। बहुपत्नी प्रथा की इस्लाम सशर्त इजाजत देता है। एक समय हिन्दुओं में भी बहुपत्नी प्रथा थी। आज अधिकतर इस्लामिक देशों में बहुपत्नी प्रथा व तीन बार तलाक कहकर विवाहविच्छेद की परंपरा को कानूनी प्रतिबंधित कर दिया गया है।

भारत के विभाजन के समय, देश की 12.4 प्रतिशत आबादी मुस्लिम थी। आज (2001 जनगणना) यह आंकड़ा 13.4 प्रतिशत है। इसी अवधि, में देश में आदिवासियों का प्रतिशत 7.5 से बढ़कर 8.5 हो गया है। इन दोनों समुदायों की आबादी में एक-एक प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है और इसका कारण भी एक ही है - अशिक्षा व गरीबी। गरीब व अशिक्षित तबके में ज्यादा बच्चे पैदा करने की प्रवृत्ति होती है। इसका धर्म से कोई लेना-देना नहीं है।

भारतीय राष्ट्र का निर्माण : अंग्रेज भारत इसलिए आए थे ताकि वे यहां से कच्चा माल लूट कर अपने देश ले जा सकें और वहां का तैयार माल भारत में ऊंचे दामों पर बेच सकें। भारत का औद्योगीकरण उन्नीसवीं सदी में शुरू हुआ और इसके साथ ही उद्योगपतियों, शिक्षित बुद्धिजीवियों व श्रमिकों के नए वर्ग उभरे। सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया भी शुरू हुई। इस प्रक्रिया को गति

प्रदान की राजा राममोहन राय (सती प्रथा उन्मूलन), जोतिबा फुले (दलित व अछूत शिक्षा), सावित्रीबाई फुले (महिला शिक्षा), डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर (सामाजिक न्याय) व भगत सिंह (श्रमिकों-कृषकों का सशक्तिकरण) आदि जैसे क्रान्तिकारी व्यक्तित्वों ने।

राष्ट्रीय आंदोलन के लक्ष्य थे जमींदारों की ताकत कम करना, औद्योगिक विकास के लिए सुविधाएं मुहैय्या करवाना और सभी नागरिकों को बराबरी का दर्जा दिलवाना।

गांधीजी के नेतृत्व में चला भारतीय स्वाधीनता आंदोलन, मानव इतिहास का सबसे बड़ा जनान्दोलन था। इस आंदोलन का चरित्र साम्राज्यवाद-विरोधी तो था ही, इसने स्वतंत्रता, समानता व बंधुत्व पर आधारित आधुनिक भारत की नींव भी रखी। इस आंदोलन का लक्ष्य, धर्मनिर्पेक्ष प्रजातंत्र की स्थापना था। ये मूल्य भारतीय संविधान का हिस्सा बनें। ये मूल्य उभरते हुए नए भारतीय राष्ट्र प्रतिनिधि थे।

फूट डालो और राज करो : जहां भारत के आमजन, राष्ट्रीय आंदोलन के साथ थे, वहीं राजा और नवाब, जमींदार और जागीरदार इसके विरोधी थे। उन्होंने धर्म-आधारित राजनीति का सहारा लिया। उन्होंने यह प्रचार किया कि स्वतंत्रता आंदोलन हमारे धर्म के खिलाफ है क्योंकि हमारा धर्म हमें राजभक्ति सिखाता है और हमें अपने राजा अर्थात् इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया के प्रति वफादार रहना चाहिए। इस मुद्दे पर हिन्दू व मुस्लिम राजा एक साथ थे। परंतु अंग्रेजों को यह भी मंजूर न था। उन्होंने इस वर्ग में भी फूट डाल दी, जिसके नतीजे में मुस्लिम राष्ट्र-राज्य की पैरोकार मुस्लिम लीग व हिन्दू राष्ट्र-राज्य की हिमायती हिन्दू महासभा का जन्म हुआ। इसके साथ ही देश में सांप्रदायिक दंगे शुरू हो गए। ये दंगे, सांप्रदायिक राजनीति का नतीजा थे। यह राजनीति, दलितों व महिलाओं की स्थिति में किसी भी प्रकार की बेहतरी की विरोधी थी। ''फूट डालो और राज करो'' की नीति व मुस्लिम और हिन्दू सांप्रदायिकता की आपसी खींच-तान के नतीजे में ही देश का विभाजन हुआ।

आतंकवाद : भारत में आतंकवाद पनपने के कई कारण हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर तेल के संसाधनों पर कब्जा करने की होड़ व राष्ट्रीय स्तर पर कश्मीर समस्या और बढ़ती सांप्रदायिकता। आतंकवाद का धर्म से कोई रिश्ता नहीं है। आतंकवादी सभी धर्मों के होते हैं—हिन्दू (लिट्टे, उल्फा), ईसाई (आयरिश रिपब्लिकन आर्मी, टिमोथी मैकवे), बौद्ध (थाईलैंड में सक्रिय कुछ समूह) व सिक्ख (खालिस्तानी)। अल् कायदा को अमेरिका ने प्रायोजित व प्रोत्साहिन किया था ताकि उसका इस्तेमाल अफगानिस्तान से रूसी सेना को खदेड़ने के लिए किया जा सके। अमेरिका ने ओसामा को यह काम करने के लिए 800 करोड़ डालर और 7000 टन हथियार और असला दिए थे। रूसी सेना को पराजित करने के बाद, अल् कायदा के कुछ लड़ाके कश्मीरी अतिवादियों के साथ हो लिये। जब किसी समुदाय पर भीषण अत्याचार होते हैं तब उसके कुछ युवा कभी-कभी आतंकवाद की राह पर चल पड़ते हैं। लिट्टे की समस्या धानु अपने शरीर पर विस्फोटक बांधकर मानव बम बन गई थी। चौदह लाख फिलिस्तीनियों को उनके घरों से बेदखल किए जाने से व्यथित लैला खलीद नामक फिलिस्तीनी लड़की ने आतंकवाद का रास्ता अपना लिया था। आज भी हम देखते हैं कि ओसामा जैसे आतंकवादी थे तो दूसरी ओर साध्वी प्रज्ञा सिंह ठाकुर जैसे। फिर भी, कुछ लोग कुटिलतापूर्वक आतंकवाद को धर्म से जोड़ते हैं जो कि गलत है।

भारतीय संविधान व प्रजातंत्र खरते में : सांप्रदायिक हिंसा, हमारे संविधान में निहित मूल्यों और सिद्धांतों के विरुद्ध हैं असली लड़ाई न तो हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच है और न ही हिन्दुओं और ईसाइयों के बीच। असली लड़ाई तो प्रजातंत्र और धर्म-आधारित राष्ट्रवाद की परिकल्पना के बीच है। धर्म के आधार पर बना पाकिस्तान, पचीस साल भी एक न रह सका और बांगलादेश नाम का एक नया राष्ट्र दुनिया के नक्शे पर उभरा। धर्म कभी राष्ट्र का आधार नहीं हो सकता। धर्म की राजनीति करने वाले, प्रजातांत्रिक अधिकारों का खातमा करना चाहते हैं और इससे सबसे ज्यादा नुकसान गरीबों और समाज के अन्य कमजोर वर्गों का होगा। डॉ. अंम्बेडकर द्वारा तैयार किया गया हमारा संविधान स्वतंत्रता, समानता व बंधुत्व पर जोर देता है। जो भी राष्ट्र धर्म (पाकिस्तान) या नस्ल (जर्मनी) पर आधारित थे वे जल्दी ही टूट गए।

हमें एक होना होगा : सांप्रदायिक संगठन, स्वतंत्रता और प्रजातंत्र के शत्रु हैं। हमें अपनी साझा विरासत को संभाल कर रखना होगा। हमें याद करना होगा भक्ति, सूफी और ईसाई संतों को। हमें दलितों (महात्मा जोतिबा फुले, डॉ. अम्बेडकर) और महिलाओं (सावित्री बाई फुले, पेरियार) को उनके अधिकार दिलाने होंगे। हमें आर्थिक न्याय (भगतसिंह) व सत्य और अहिंसा (महात्मा गांधी) की स्थापना के लिए संघर्ष करना होगा। हमारी विविधता में ही हमारी शक्ति निहित है। हमें समाज के कमजोर वर्गों का सशक्तीकरण कर, हाथों में हाथ डालकर शांति और सद्भाव की स्थापना के लक्ष्य की ओर कदम बढ़ाने होंगे। स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के संवैधानिक मूल्य, हमारी सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था के आधार होने चाहिए। ❑

(45वां अखिल भारतीय सर्वोदय समाज सम्मेलन, आगरा (उ.प्र.) में 24 अक्टूबर, 2013 को दिये गये भाषण का सार।)

खेती में असली क्रांति

❑ देविंदर शर्मा

साल-दर-साल किसानों की आर्थिक दशा बद-से-बदतर होती जा रही है। साथ ही कृषि भूमि किसानों के लिए अलाभकारी होकर उनकी मुसीबतें बढ़ा रही हैं। रासायनिक खाद के अत्यधिक इस्तेमाल से मिट्टी जहरीली हो रही है। अनुदानित हाइब्रिड फसलें मिट्टी की उर्वरता को नष्ट कर रही हैं और भूजल स्तर को गटक रही है। इसके अलावा इन फसलों में बहुतायत से इस्तेमाल होने वाले रासायनिक कीटनाशक न केवल भोजन को विषाक्त बना रहे हैं, बल्कि और अधिक कीटों को पनपने का मौका भी दे रहे हैं। परिणामस्वरूप किसानों की आमदनी घटने से वे संकट में फंस रहे हैं। खाद, कीटनाशक और बीज उद्योग किसानों की जेब से पैसा निकाल रहा है, जिनके कारण किसान कर्ज में डूबकर आत्महत्या जैसे कदम उठाने को मजबूर हैं।

इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि किसानों के खूनखराबे के लिए सबसे अधिक दोषी कृषि अधिकारी और विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक हैं। रोजाना दर्जनों किसान रासायनिक कीटनाशक पीकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर लेते हैं। पिछले 15 वर्षों में कृषि विनाश का बोझ ढोने में असमर्थ तीन लाख से अधिक किसानों ने आत्महत्या कर ली है। यह सिलसिला रुकता दिखायी नहीं देता। पुरजोर प्रयासों के बावजूद करोड़ों किसान अपनी पीढ़ियों को विरासत में कर्ज देने को मजबूर हैं।

सरकार और कृषि विश्वविद्यालयों को अकारण दोषी नहीं ठहराया जा रहा है, किन्तु एक हद तक किसान भी इस संकट के लिए जिम्मेदार हैं। जल्दी से जल्दी पैसा कमाने का लोभ उन्हें गैरजरूरी प्रौद्योगिकियों की ओर खींच रहा है, जो अंततः उनके हितों के खिलाफ है। लंबे समय से किसान उपयोगी कृषि व्यवहार से विमुख होते जा रहे हैं और कृषि उद्योग व्यापार के जाल में फंसते जा रहे हैं। उद्योग उन्हें एक सपना बेच रहा है—जितनी अधिक उपज प्राप्त करोगे, उतनी ही कमाई होगी, जबकि असलियत में उद्योग जगत का मुनाफा बढ़ रहा है, किसानों को तो मरने के लिए छोड़ दिया गया है।

हरित क्रांति के 40 साल बाद 90 प्रतिशत से अधिक किसान गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। मानें या न मानें, देश भर में किसान परिवार की औसत आय 2400 रुपये से भी कम है। यह भी तब जब किसान अधिक आय के चक्कर में तमाम प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल कर रहे हैं। इस प्रकार अनेक रूपों में किसानों के साथ जो श्राप जुड़ गया है उसके लिए वे भी कम जिम्मेदार नहीं हैं। जरा इस पर विचार करें कि क्या किसानों को कृषि संकट के लिए दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए? आप कब तक सरकार और कृषि विश्वविद्यालयों के सिर ठीकरा फोड़ते रहेंगे। आप कृषि से दीर्घकालिक और टिकाऊ तौर पर अधिक आय हासिल क्यों नहीं करते? कृपया यह न कहें कि यह असंभव है। अगर किसान अपने परंपरागत ज्ञान का इस्तेमाल कृषि में करें तो वे इस लक्ष्य को आसानी से हासिल कर सकते हैं।

महाराष्ट्र के यवतमाल जिले के डरोली गांव के सुभाष शर्मा से मिलिए। वह उस विदर्भ पट्टी से हैं, जहां बड़ी संख्या में किसान आत्महत्या करते हैं, लेकिन वह कृषि से अच्छी-खासी आमदनी हासिल कर रहे हैं। सुभाष शर्मा कोई बड़े किसान नहीं हैं। उनके पास 16 एकड़ जमीन है। देश में अधिकांश किसानों की तरह वह भी कर्ज के जाल में फंसे हुए थे।

सुभाष के अनुसार, '1988 से 1994 के बीच का समय सबसे बड़ी परेशानी का समय था। तब मैंने इस चक्रव्यूह से बाहर निकलने का उपाय ढूंढा और कर्ज का जुआ उतार फेंका। मैंने रासायनिक खाद और कीटनाशकों की कृषि-पद्धति को तिलांजलि दे दी और ऑर्गेनिक कृषि को अपना लिया। इससे एक नई शुरुआत हुई।'

वह कहते हैं कि कर्ज के इस भयावह चक्र से बाहर निकलने का एक ही रास्ता है कि किसान हरित क्रांति के कृषि मॉडल का त्याग कर दें। हरित क्रांति कृषि व्यवस्था में मूलभूत खामियां हैं इनमें कभी भी किसान के हाथ में पैसा नहीं टिक सकता। अब वह देशभर में कार्यशाला आयोजित कर किसानों को जागरूक कर रहे हैं कि प्राकृतिक कृषि के तरीकों से कर्ज के जाल को कैसे काटा जा सकता है? कृषि संवृद्धि और देश की खाद्यान्न सुरक्षा का जवाब इसी में निहित है।

सुभाष शर्मा की आर्थिक स्थिति इतनी सुदृढ़ हो गयी है कि उन्होंने कामगारों के लिए 15 लाख का आपात कोष भी जुटा लिया है। किसी की मृत्यु होने पर या फिर बेटी के विवाह के अवसर पर उनके सामाजिक सुरक्षा कोष से कुछ राहत मिल जाती है। वह श्रमिकों के बच्चों की शिक्षा का खर्च भी उठाते हैं। इसके अलावा उन्हें बोनस और छुट्टी यात्रा का भत्ता भी देते हैं।

चौकिए मत, सुभाष शर्मा अपने 51 कामगारों को प्रतिवर्ष 4.5 लाख रुपये का बोनस देते हैं, जो प्रति व्यक्ति 9000 रुपये बैठता है। वह अपने श्रमिकों को साल में एक बार घूमने के लिए छुट्टी देते हैं। प्रत्येक कामगार को साल में पचास दिन की छुट्टियां मिलती हैं। एक ऐसे समय में जब शायद ही किसी दिन श्रमिकों के साथ अमानवीय अत्याचार की खबरें न आती हों, इस तरह का रवैया सुखद आश्चर्य में डालने वाला है।

जहां तक कीटनाशकों का सवाल है, हरियाणा के जींद जिले में चुपचाप एक क्रांति हो रही है। यहां के किसान बीटी कॉटन पैदा नहीं करते, बल्कि प्राकृतिक परभक्षियों पर भरोसा करते हैं। ये परभक्षी कीट नुकसान-दायक कीटों को चट कर जाते हैं। उन्होंने कपास में लगने वाले प्रमुख कीट मिली बग का प्राकृतिक उपाय खोज निकाला है। जींद→

देशी बीजों की खेती

❑ बाबा मायाराम

छत्तीसगढ़ में एक अनूठा अस्पताल है जहां बीमारी के इलाज के साथ उसकी रोकथाम पर जोर दिया जाता है। स्वस्थ रहने के लिए लोगों को अच्छा भोजन मिले इसके लिए कृषि कार्यक्रम चलाया जा रहा है। बिलासपुर जिले के कई गांवों में किसान जैविक खेती से धान पैदावार बढ़ा रहे हैं। जब वर्ष 2000 में जन स्वास्थ्य सहयोग नामक गैर-सरकारी संस्था ने बिलासपुर जिले में स्वास्थ्य का काम शुरू किया और अपने अध्ययन के दौरान यह पाया कि ज्यादातर बीमारियों का संबंध कुपोषण से है तब संस्था ने अपना कृषि कार्यक्रम शुरू किया। जन स्वास्थ्य सहयोग ने अपने एक-डेढ़ एकड़ की भाटा (कमजोर) जमीन पर बिना रासायनिक वाली जैविक खेती शुरू की। आज यहां धान की डेढ़ सौ से ज्यादा किस्में संग्रहीत हैं। इसके अलावा ज्वार की तीन, मडिया की छह, गेहूं की छह और अरहर की छह देशी किस्में हैं। चना, अलसी, कुसुम, मटर, भिण्डी आदि देशी किस्में भी हैं। रंग-बिरंगे देशी बीज न केवल सौन्दर्य से भरपूर हैं बल्कि स्वाद में भी बेजोड़ हैं। औषधी गुणों से संपन्न हैं और स्थानीय मिट्टी, पानी और हवा के अनुकूल हैं।

आखिर मनुष्य ने ही जंगलों से तरह-तरह की फसलों के गुणधर्मों की पहचान कर खेती में उन्हें उगाया है और इसी के परिणामस्वरूप आज हम बीजों के मामले में समृद्ध हैं। लेकिन आज हमने देशी बीजों की संपदा खो दी है, इसी को संजोने व संवारने का प्रयास जन स्वास्थ्य सहयोग में किया जा रहा है। इस प्रयोग की शुरुआत से जेकब नेल्लीथानम जुड़े हुए हैं, जो बाबा आमटे से प्रभावित होकर केरल से आये थे और इसके बाद बरसों से परम्परागत खेती व जैविक खेती के प्रयोगों से लगातार जुड़े हुए हैं। उन्होंने मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र में मालवी गेहूं की देशी किस्मों पर प्रयोग किया है और छत्तीसगढ़ में विश्व प्रसिद्ध डॉ. आर. एच. रिछारिया के साथ भी काम किया है। उन्होंने रिछारिया कैम्पेन के नाम से देशी बीजों के संरक्षण और संवर्धन का अभियान भी चलाया हुआ है।

अब जन स्वास्थ्य सहयोग के दो कार्यकर्ता ओमप्रकाश और महेश शर्मा इस काम को आगे बढ़ा रहे हैं। गनियारी स्थित कृषि फार्म में ओमप्रकाश ने और बिलासपुर जिले के कोटा-लोरमी विकासखंड के गांवों में महेश शर्मा ने जैविक खेती के काम को फैलाया है। दोनों कार्यकर्ता पूर्व में आंदोलनों से जुड़े रहे हैं लेकिन अब पूर्णकालिक कार्यकर्ता होकर इस काम को आगे बढ़ा रहे हैं। गनियारी में एक-दो डिसमिल की छोटी-छोटी क्यारियों में देशी धान का प्रयोग गत एक दशक से चल रहा है। इसके प्रमुख कार्यकर्ता ओमप्रकाश से चर्चा की है। ओमप्रकाश ने बताया कि धान की कई किस्में हैं जिनमें हरून धान 60 से 90 दिन वाली, मध्यम 90 से 120 दिन वाली और गहरून 120 से 145 दिन वाली हैं। ये अलग-अलग किस्म की मिट्टी वाली जमीन में होती हैं।

उन्होंने बताया कि धान की नई मेडागास्कर पद्धति के प्रयोग हमने देशी धान बीजों से किये जिसमें उत्पादन औसत धान से दोगुना तक पाया गया। यहां हुए प्रयोग में प्रति एकड़ 40 क्विंटल तक पाया गया है। जब हाल ही मुझे ओमप्रकाश अपने खेत में ले गये तो वे कृषि विशेषज्ञों की तरह हर बीज व पौधे का ब्यौरा दे रहे थे। चूंकि वे खुद और उनकी पत्नी खेत में काम करते हैं, इसलिए इन्हें खेती का ज्ञान है और इसीलिए वे बहुत बारीक जानकारियां रखते हैं। अरहर उत्तर प्रदेश से आयी है, मडिया बस्तर से। कुसुम से तेल निकलता है और काबुली चना का दाना बड़ा होता है। धान की कई किस्में सुगंधित हैं और कई बिना पानी वाली। मुंगलानी पौष्टिक होता है और ज्वार की रोटी हाजमे के लिए बहुत अच्छी मानी जाती है।

खेती में मेढ़ पर अरहर के पौधे लहलहा रहे थे। बेर के पेड़ों के नीचे बच्चे खेल रहे थे। एक खेत में सब्जियां लगी थीं। मूली, भंटा, टमाटर, धनिया, मिर्ची, बरबटी, प्याज और भिण्डी। उनकी पत्नी सब्जी वाले खेत

→के सुरेन्द्र दलाल ने बड़े परिश्रम के बाद मिली बग को काबू में करने में सफलता प्राप्त कर ली है। उन्होंने इस विषय पर काफी शोध किया और इस नतीजे पर पहुंचे कि नुकसान न पहुंचाने वाली आकर्षक लेडी बीटल इन मिली बगों को चट करने के लिए काफी है। यह इन मिली बगों को बड़े चाव से खाती है, जिससे किसानों का महंगे कीटनाशकों पर पैसा खर्च नहीं होता।

उन्होंने महिला पाठशाला भी शुरू की है। इन दो किसानों ने कृषि क्षेत्र में नया अध्याय लिख दिया है। अब सही समय है कि आप इनकी सफलता से सबक लें और कृषि का खोया हुआ गौरव वापस लौटा दें। निश्चित तौर पर आप यह कर सकते हैं। इसके लिए बस दृढ़ निश्चय की आवश्यकता है। तभी हम उम्मीद कर सकते हैं कि किसानों के लिए नया वर्ष नया हर्ष लेकर आयेगा। ❑

में काम कर रही थी। उनकी बेटी ने मुझे पके बेर लाकर दिये। वे बताते हैं कि खेती के लिए जमीन का स्वास्थ्य भी सुधारना जरूरी है। रासायनिक खेती के कारण जमीन की उर्वरा शक्ति कमजोर होती जा रही है और उर्वर बनाने वाले सूक्ष्म जीवाणु खतम होते जा रहे हैं। बेजा रासायनिक खाद के इस्तेमाल से जमीन सख्त होती जा रही है। भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के लिए मिश्रित फसलों को खेतों में बोया जाता है। यह परम्परागत तरीका है। देश के कई इलाकों में अलग-अलग तरह की मिश्रित फसलें होती हैं। बारहनाजा, नवदान्या और उतेरा आदि पद्धति अलग-अलग जगह प्रचलित है।

इसके अलावा, हरी खाद ढनढनी, सन, सोल, चरौरा को भी बेकार फिर मिट्टी में सड़ा दिया जाता है, जिससे जमीन उतरोत्तर उर्वर बनती जाती है। उन्होंने बताया कि इस भाटा कमजोर जमीन को हरी खाद से ही उर्वर बनाया है। महेश शर्मा सामुदायिक कृषि कार्यक्रम के प्रमुख ने बताया कि अब हमारा यह प्रयोग न केवल गनियारी में बल्कि कई गांवों में फैल चुका है। इस वर्ष 2013 में 300 किसानों ने मेडागास्कर पद्धति से धान की खेती की है, जो पूरी तरह जैविक व देशी धान बीजों से की जा रही है। किसान कार्यकर्ता भुवन सिंह ने बताया कि धान की रासायनिक खेती में प्रति एकड़ 5-6 हजार रुपये लागत आती है और जैविक खेती में एक से डेढ़ हजार रुपये। जबकि उत्पादन दोगुना मिलता है। अगर मेढ़ पर पौधे लगाये तो इससे हमें लकड़ी, फल, शुद्ध हवा और जमीन को पानी सब कुछ मिलेंगे। कुल मिलाकर, यह कहा जा सकता है कि यह प्रयोग अनूठा है, छत्तीसगढ़ में एक मौन क्रांति की तरह है जो सराहनीय होने के साथ अनुकरणीय है।—*इंडिया वाटर पोर्टल (हिन्दी)*

पर्यावरण सहित हो विकास

❑ जाहिद खान

हमारे मुल्क में लंबे समय से नीतिगत निर्णयों के समय विकास के नाम पर पर्यावरण संरक्षण के तकाजे की बलि दी जाती रही है। आर्थिक वृद्धि के नाम पर पर्यावरण को जमकर नुकसान पहुंचाया गया। इसी का नतीजा है कि हालिया सालों में पर्यावरण संबंधी विवाद खूब उभरकर आये। इस पर विराम लगाने के लिए आखिरकार, हमारी सरकार संजीदा हुई है। औद्योगिक और खनन परियोजनाओं में पर्यावरण संबंधी विवादों पर लगाम लगाने के लिए जल्द ही एक स्वतंत्र नियामक 'राष्ट्रीय पर्यावरण आकलन और निगरानी प्राधिकरण' का गठन किया जायेगा। यह प्राधिकरण मुल्क में विकास की तमाम परियोजनाओं को पर्यावरण संबंधी मंजूरी देने के लिए एक स्वतंत्र नियामक के तौर पर कार्य करेगा।

यह प्राधिकरण यदि अस्तित्व में आया तो न सिर्फ परियोजनाओं द्वारा पर्यावरण मंजूरी लेने की प्रक्रिया में पूरी तरह से बदलाव आ जायेगा बल्कि परियोजनाओं पर पर्यावरण संबंधी मुद्दों के चलते होने वाली मुकदमेबाजी पर भी रोक लगेगी। बीते कुछ सालों में मुल्क के अंदर चल रही कई बड़ी औद्योगिक और खनन परियोजनाओं के ऊपर सवाल उठते रहे हैं, यह सवाल मुख्यतः पर्यावरण संबंधी है। इन परियोजनाओं में सभी कायदे-कानूनों को ताक पर रखकर बड़े पैमाने पर पर्यावरण व वन संबंधी नियमों का उल्लंघन किया गया। कई परियोजनाओं की तो मंजूरी देने से भी पर्यावरण मंत्रालय ने इनकार कर दिया। स्टील क्षेत्र की दिग्गज दक्षिण कोरियाई कंपनी पास्को व अनिल अग्रवाल की वेदांत से लेकर रीयल्टी कंपनी, लवासा कॉरपोरेशन की परियोजनाओं पर पर्यावरण कानून के उल्लंघन के इलजाम लगे और मंत्रालय व अदालतों ने बार-बार काम रोका।

उड़ीसा स्थित बेडाबहल अल्ट्रा मेगा बिजली परियोजना (यूएमपीपी) जैसी कुछ परियोजनाओं और उससे जुड़े कोयला ब्लॉक के उत्खनन को लेकर भी तमाम एतराज उठे, जिसके चलते बिजली और पर्यावरण मंत्रालय आमने-सामने आ गये। पर्यावरण के कार्यकाल में तो पर्यावरण मंत्रालय का पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर दूसरे मंत्रालयों से कई बार टकराव हुआ। पर्यावरण मंत्रालय और कोयला मंत्रालय के बीच यह तकरार काफी दिनों तक चली। पर्यावरण मंत्री ने 203 नये कोयला क्षेत्रों में खनन की मंजूरी देने से साफ-साफ इनकार कर दिया था। प्रधानमंत्री ने विकसित देशों को लक्ष्य कर एक बात दो टूक शब्दों में कही कि भारत पर्यावरण संरक्षण के मकसद से कदम उठाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आम सहमति होने तक इंतजार नहीं करेगा।

कुल मिलाकर, आज दुनिया भर में बढ़ते वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के चलते पर्यावरण सुरक्षा और संरक्षण बड़ा मुद्दा बनकर उभरा है। विकसित-विकासशील मुल्क अपने तई कोशिश कर रहे हैं कि पर्यावरण सुरक्षा और भी बेहतर हो और पर्यावरण नुकसान कम से कम हो, यह उनका अहम एजेण्डा है और यह बदलते वक्त की दरकार भी है। ❑

श्रद्धांजलि

हम सबकी आदरणीया श्रीमती उर्मिला श्रीवास्तवजी की भौतिक देह 92 वर्ष की आयु में 29 नवंबर, 2013 की सुबह पंचतत्त्व में विलीन हो गयी। आप 'सर्वोदय जगत' के संपादक श्री बिमल कुमार की माताजी थीं। सर्व सेवा संघ तथा 'सर्वोदय जगत' परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि के साथ ही ईश्वर से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करे।

–स.ज. प्रतिनिधि

आर्थिक लाभ से पर्यावरण रक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण

❑ भरत झुनझुनवाला

बड़ी परियोजनाएं : हमारे पूर्वजों ने आचरण का मंत्र दिया था 'धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष' यानी धर्म के लिए अर्थ को त्याग दो, अर्थ के लिए काम को त्याग दो। यहां धर्म का अर्थ हिन्दू, मुस्लिम एवं ईसाई धर्मों से नहीं है बल्कि पर्यावरण, शांति एवं सौहार्द से लेना चाहिए। अर्थात् यह मंत्र बताता है कि पर्यावरण की रक्षा करने के लिए आर्थिक लाभ को त्याग देना चाहिए। जैसे घर के आंगन में नीम का पेड़ हो तो पर्यावरण शुद्ध होता है। दुकान बनाने के लिए नीम का पेड़ नहीं काटना चाहिए। दुकान का आकार ऐसा बनाना चाहिए जिसमें पेड़ भी जिन्दा रहे और दुकान भी बन जाये। पेड़ को बचाये रखने से आय लंबे समय तक होती है। पर्यावरण शुद्ध रहता है, बीमारी कम होती है और कार्य करने की क्षमता में वृद्धि होती है। छोटी दुकान बनाने से जितनी आय की हानि होती है उससे ज्यादा लाभ पर्यावरण की शुद्धि से हासिल हो जाता है।

इसी मंत्र को केन्द्र सरकार ने उत्तराखंड में बन रही लोहारीनागपाला परियोजना पर लागू किया है। पर्यावरणविद् डॉ. जी.डी. अग्रवाल की मांग थी कि गंगोत्री से उत्तरकाशी तक भागीरथी पर कोई भी जल-विद्युत परियोजना न बनायी जाये। उनका कहना था कि मुक्त बहाव वाली गंगा के दर्शन एवं स्नान से देशवासियों को ज्यादा लाभ होगा। तुलना में बिजली से कम लाभ होगा। इस आकलन में विशेष दृष्टि का समावेश है। गंगा में स्नान करने से लाभ मुख्यतः आस्थावान तीर्थयात्रियों को होता है। इसके विपरीत बिजली के उपयोग से अधिकतर लाभ उच्च आय वाले शहरवासियों को होता है जिन्हें तुलनात्मक दृष्टि से भोगी कहा जा सकता है। अतः परियोजना रद्द करने से आस्थावान तीर्थयात्रियों को लाभ होता है जबकि परियोजना के निर्माण से उच्चवर्गीय भोगियों को लाभ होता है। इस द्वंद्व में केन्द्र सरकार ने तीर्थयात्रियों का पक्ष लिया है।

परियोजना को बनाने वाली सरकारी कंपनी नेशनल थर्मल पॉवर कार्पोरेशन ने पर्यावरण मंत्रालय के सामने परियोजना के लाभ-हानि का चित्र दाखिल किया है। कहा है कि परियोजना की लागत 2775 करोड़ रुपये है। इससे 446 करोड़ रुपये प्रति वर्ष का लाभ बिजली के विक्रय से होगा। 8 करोड़ प्रति वर्ष का लाभ कर्मियों के रोजगार के माध्यम से होगा। कुल लाभ 454 करोड़ रुपये प्रति वर्ष होगा जो कि पूंजी पर 16 प्रतिशत का उत्तम रिजल्ट देता है। इस प्रकार परियोजना को आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद बताया गया है।

परियोजना द्वारा बताया गया लाभ सच्चा नहीं है। एनटीपीसी ने कुल बिक्री की रकम को परियोजना का लाभ बताया है। वास्तव में कुल आय में से खर्च को घटाकर लाभ की गणना की जाती है। वास्तव में परियोजना का लाभ एनटीपीसी के प्रॉफिट के बराबर भी नहीं होता है। परियोजना का लाभ अंततः उपभोक्ता को होता है। अतः देखना चाहिए कि 250 करोड़ यूनिट बिजली के उपयोग से उपभोक्ता को कितना लाभ होगा?

लोहारीनागपाला परियोजना से बिजली का उत्पादन लागत 1.78 रुपये प्रति यूनिट बैठता है। यदि यह परियोजना नहीं बनेगी तो उपभोक्ता को बिजली दूसरे महंगे स्रोतों से खरीदनी होगी। मेरा आकलन है कि दूसरे स्रोत से बिजली 2.60 रुपये प्रति यूनिट बैठेगी। इस प्रकार परियोजना का लाभ 80 पैसे प्रति यूनिट अथवा 143 करोड़ प्रति वर्ष होगा। लाभ को आज की गणना के लिए डिस्काउंट किया जाता है। जैसे पांच वर्ष बाद फिक्स डिपाजिट से आप पाना चाहते हों तो आज केवल 660 रुपये जमा कराने होते हैं। डिस्काउंट करने के बाद 30 वर्षों में यह रकम 688 करोड़ बैठती है। रोजगार से भविष्य में होने वाले लाभ की रकम 42.4 करोड़ रुपये बैठती है। परियोजना के 30 वर्ष के जीवनकाल में कुल 730 करोड़ रुपये बैठता है। यानी देश के लिए परियोजना घाटे का सौदा है। 2775 करोड़ की लागत के सामने लाभ केवल 730 करोड़ है।

इसके अलावा परियोजना से समाज को भारी नुकसान होता है। नदी को टनल में बहाने से पानी का धरती, हवा एवं सूक्ष्म प्राणियों से संपर्क कट जाता है जिससे उसकी गुणवत्ता में गिरावट आती है। लोहारीनागपाला आर्थिक और सामाजिक दोनों दृष्टि से असफल है। फिर भी केन्द्र सरकार का ऊर्जा मंत्रालय इसे बनाने को उद्यत है। कारण कि परियोजना एक विशेष वर्ग के लिए लाभप्रद है जैसे सिगरेट और शराब की मार्केटिंग विशेष वर्ग के लिए लाभप्रद है। जहां तक एनटीपीसी का सवाल है, घोषित 1.78 रुपये की बिजली के विक्रय मूल्य पर यह परियोजना घाटे का सौदा है। 446 करोड़ की कुल बिक्री में कंपनी का लाभ 110 करोड़ भी मान लें तो भी कुल लागत पर लाभांश मात्र 4 प्रतिशत बैठता है। वास्तव में बिजली की बिक्री 1.78 से ऊंचे दाम पर की जायेगी। परंतु केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण से स्वीकृति लेने के लिए इसे कम दिखाया गया है। अर्थ हुआ कि उपभोक्ता को नुकसान होगा और एनटीपीसी को लाभ। इसके अलावा ऊर्जा मंत्रालय के लाभ भी परियोजना से जुड़े हुए हैं। दूसरी सार्वजनिक इकाइयों की तरह एनटीपीसी द्वारा भी उच्च अधिकारियों को राशि पहुंचायी जाती होगी। संभवतया इस राशि के लालच में ऊर्जा मंत्रालय इस हानिप्रद परियोजना को लागू करना चाहता हो।

राज्य सरकार भी परियोजना के पक्ष में खड़ी है चूंकि इसे उत्पादित बिजली में से 12 प्रतिशत बिजली मुफ्त मिलेगी, जिससे हुई आय से सरकारी कर्मचारियों के वेतन, भत्ते एवं सुविधाओं का भुगतान किया जा सकेगा। लोहारीनागपाला के चलने से अन्य जल विद्युत परियोजनाओं का भी आवंटन किया जा सकेगा। याद रहे कि हाल में उत्तराखंड हाईकोर्ट ने 56 आवंटनों को अनियमितताओं के चलते रद्द किया था। अतः लोहारीनागपाला परियोजना में धर्म और अर्थ का द्वंद्व नहीं बल्कि अनर्थ और कमीशन का द्वंद्व निहित था। यह परियोजना न तो धर्म का विस्तार करती थी न ही अर्थ का। केवल सरकारी अधिकारियों के पोषण के लिए इसे बनाया जा रहा था। इसे रद्द करना सर्वथा उचित है।—*इंडिया वाटर पोर्टल (हिन्दी)*

समाज आधारित समाज का बिखराव

❑ कश्मीर उप्पल

'जब हम विकास को बढ़ाने की बात करते हैं तो हमारा मतलब वस्तुओं का विकास है अथवा मनुष्यों का? और अगर हम मनुष्यों के विकास की बात कहते हैं तो कौन-से मनुष्य? वे कहां हैं? उन्हें मदद की जरूरत क्यों है? मनुष्य में दिलचस्पी लेने से ऐसे असंख्य प्रश्न उठेंगे।' ई. एफ. शुमाकर अपनी पुस्तक 'स्माल इज ब्युटीफुल' में स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य में दिलचस्पी लेने से असंख्य प्रश्न उठते हैं। शायद इसीलिए हमारे अर्थशास्त्री और नेता राष्ट्रीय उत्पादन, राष्ट्रीय आय, बचत विनियोग, विदेशी मुद्रा भंडार, शेयर सूचकांक और आर्थिक विकास की दर जैसी अमूर्तन शब्दावली में देश को संबोधित करते हैं।

लेकिन सरकारी प्रचार से संस्थानों और बुद्धिजीवियों के विचार और तथ्य अनदेखे रह जाते हैं। वैसे सरकारें खुद अपने द्वारा बनवाये गये तथ्यों को ही अपना अंतिम सत्य मान बठती हैं। सरकारों के कामकाज के मूल्यांकन के कई आधार होते हैं। इन आधारों में से किसान आत्महत्या और शिशु मृत्यु दर सबसे संवेदनशील और महत्त्वपूर्ण मुद्दे हैं। दुनिया के पिछड़े, विकासशील और विकसित देश अपनी भौगोलिक स्थिति से नहीं वरन् अपने नागरिकों के जीवन स्तर से जाने जाते हैं।

भारत सरकार की जनगणना रपट, 2011 के अनुसार भारत के कई राज्यों में कृषिगत समस्याओं के कारण खेती करने वाले किसानों की संख्या घट रही है। मध्य प्रदेश में ही खेती करने वालों की संख्या 11 प्रतिशत घटकर 98 लाख के आसपास रह गयी है। 2001 की जनगणना तक एक करोड़ 10 लाख लोग खेती से जुड़े थे। अब इनमें से कई किसान कृषि मजदूरी करने में लगे हैं। 'मालिक से मजदूर बन जाना' कोई सरल वाक्य नहीं है।

चेन्नई स्थित पत्रकारिता के एशियन कॉलेज के अर्थशास्त्री प्रोफेसर नागराज द्वारा 2008 में किसान-आत्महत्याओं पर किये गये नवीन अध्ययन के अनुसार भारत में 2001 की जनगणना की तुलना में 2011 की जनगणना में किसान आत्महत्याओं में अधिक वृद्धि हुई है।

देश के मध्य में स्थित पांच बड़े राज्य आंध्र, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में देश में हुई कुल किसान आत्म-हत्याओं की दो-तिहाई आत्म हत्याएं हुई हैं। राज्य सरकारें और पुलिस किसानों के नाम जमीन की रजिस्ट्री होने पर ही किसान आत्महत्या का प्रकरण दर्ज करती हैं। भारत के संयुक्त परिवारों में परिवार के मुखिया या एक बड़े सदस्य के नाम पर ही जमीन दर्ज होने की परंपरा है। ऐसे में किसान आत्महत्याओं की संख्या न जाने कितनी और अधिक हो सकती है। प्रोफेसर नागराज के अनुसार छत्तीसगढ़ राज्य ने 2011 वर्ष को 'जीरो किसान आत्महत्या वर्ष' घोषित किया था, जबकि सच्चाई यह है कि 2011 के पूर्व के तीन वर्षों में छत्तीसगढ़ में देश में हुई कुल किसान आत्महत्याओं से 350 गुना अधिक आत्महत्याएं हुई हैं। इस दौरान यहां 4700 किसानों की आत्महत्या दर्ज हैं।

इसके पहले पंजाब और हरियाणा जैसे विकसित राज्य भी 'महिला-किसान आत्महत्या शून्य वर्ष' मना चुके हैं। सच्चाई यह है कि अत्यन्त कम महिलाओं के नाम किसानी जमीन दर्ज है। जनगणना वर्ष 2001 से वर्ष 2011 में अधिक किसान आत्महत्या होने वाले 10 राज्यों में पंजाब और हरियाणा भी शामिल हैं। राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो रिकार्ड के अनुसार 1995 से 2011 तक 2,70,940 किसानों ने आत्महत्या की है। इस प्रकार औसतन 46 किसान प्रतिदिन आत्महत्या करते हैं। इन बड़े पांच राज्यों में महाराष्ट्र को छोड़कर अन्य किसानों की संख्या में जनगणना 2011 में कमी दर्ज हुई है।

भारत में किसान आत्महत्या की दर 16.3 प्रति एक लाख किसान थी, जबकि शेष सामान्य जनसंख्या की आत्महत्या दर 11.1 थी। इस तरह महाराष्ट्र में किसानों को छोड़कर सभी भारतीयों की तुलना में किसान आत्महत्या की दर 1.60 प्रतिशत अधिक थी। इसी तरह 22 मुख्य राज्यों में से 16 राज्यों में किसानों द्वारा आत्महत्या की दर शेष जनसंख्या में आत्महत्या से अधिक है।

किसान आत्महत्याओं की पृष्ठभूमि में ही शिशु मृत्यु दर के आंकड़ों को समझना जरूरी है। किसानों की नई कृषि और ग्रामीण व्यवस्था में हिम्मत टूट रही है तो गर्भवती स्त्रियों और नवजात शिशुओं के पांव परती-भूमि पर कैसे टिक सकते हैं। इस वर्ष 'सेव द चिल्ड्रन' की रपट हमारे देश की व्यवस्था पर एक बड़ा प्रश्न खड़ा करती है। इसका इस वर्ष का विषय 'विश्व की माताओं की स्थिति' पर केन्द्रित है। इस रपट के अनुसार प्रथम दिवस शिशु मृत्यु में इस बार भी भारत 'प्रथम' स्थान पर ही रहा है। भारत में जन्म के पहले दिन ही 3,09,300 नवजात शिशुओं की मृत्यु हो जाती है। यह पूरे विश्व की प्रथम-दिवस शिशु मृत्यु का 29 प्रतिशत है।

विश्व में तंजानिया, अफगानिस्तान, इंडोनेशिया, बांगलादेश, इथोपिया, कांगो, चीन, पाकिस्तान और नाईजीरिया में यह मृत्यु दर 9 प्रतिशत से भी कम है। चीन को छोड़कर शेष देशों की जनसंख्या भारत से कम है, परंतु अन्य दूसरे देश आतंकवाद, गृहयुद्ध और अकाल से पीड़ित भी हैं। इन देशों में प्रशासकीय अव्यवस्था के बीच कम-से-कम एक सामाजिक व्यवस्था तो बनी हुई है।

'सेव द चिल्ड्रन' की रपट का दूसरा भाग और भी अधिक भयावह तथ्यों को उजागर करने वाला है। भारत के चयनित राज्यों में प्रति 1000 जीवित जन्म देने वाले बच्चों में से जन्म के 7 दिनों के अंदर मर जाने वाले बच्चों की मृत्यु दर विशेषकर 'बीमारु' राज्यों में सर्वाधिक है। इस रपट के अनुसार इस श्रेणी के बच्चों की संख्या में मध्य प्रदेश→

गंगा के बाद यमुना की बारी

❑ विमल भाई

''जितनी गंगा की उतनी ही यमुना की बर्बादी हो'' इस लक्ष्य में सरकारें लगातार आगे बढ़ रही हैं। दिल्ली में यमुना को नाले में तब्दील करने के बाद गंगा पर टिहरी बांध से हर क्षण 300 क्यूसेक पानी का दोहन और यमुना की ऊपरी स्वच्छ धारा को भी समाप्त करके वहीं से यमुना को नहरों, पाइपलाइनों में डालकर दिल्ली की गैर जरूरतों को पानी दिया जाये, इसकी कवायद चालू है। दूसरी तरफ कोका कोला कम्पनी जिसने लोगों में प्यास जगाने का ठेका लिया है उसे भी उत्तराखंड सरकार ने न्यौता दे दिया। वह भी वहीं अपनी यूनिट चालू करेगी। राज्य सचिव का कहना है कि कम्पनी भूगर्भीय जल का दोहन करेगी। उद्योग मंत्रालय के प्रमुख सचिव ने आश्वासन दिया है कि कोका कोला को पानी की कमी नहीं होने दी जायेगी। चाहे हमें यमुना बैराज की जगह पास की दूसरी नहरों से पानी लाना पड़े। किन्तु इस विषय में कोई विवाद नहीं होने दिया जायेगा। सचिवजी कोकाकोला कम्पनी की इस उदारता पर बड़े ही नम्र हैं कि कम्पनी ने भूमि लागत में 55 प्रतिशत छूट लेने से इनकार कर दिया। उत्तराखंड का उद्योग मंत्रालय मुख्यमंत्री श्री विजय बहुगुणा के पास ही है। जो बांधों के भी बड़े हिमायती हैं।

सरकार को यह समझ कौन दे कि पानी नदी से लो या उसके आसपास से लो कुल मिलाकर यमुना में पानी घटेगा ही। ऊपरी यमुना घाटी में छः कार्यरत, एक निर्माणाधीन और उन्नीस जलविद्युत परियोजनाएं प्रस्तावित हैं। यमुना घाटी का भविष्य भी बंधनकारी है।

बांधों को लेकर भी सरकारें अपने ही बनाये नियम-कायदे-कानूनों की अनदेखी करके आगे बढ़ रही हैं। योजना आयोग केवल आंकड़ों में खेलता है। यमुना को इससे अलग नहीं रखा है। यमुना पर प्रस्तावित लखवार बांध परियोजना ताजा उदाहरण है। इस प्रस्तावित परियोजना में यमुना नदी पर 204 मीटर ऊंचा बांध जिसमें 580 मिलियन क्यूबिक मीटर जल धारण क्षमता होगी। जिसमें 50 गांवों की 1385.5 हेक्टेयर भूमि डूबेगी और 868.08 हेक्टेयर वन भूमि का इस्तेमाल होगा। यह परियोजना यमुनोत्री से मात्र 130 किमी नीचे है और राज्य की राजधानी देहरादून के बहुत निकट। यह उत्तराखंड के उसी गढ़वाल क्षेत्र में आता है जहां टिहरी बांध से विस्थापित आज भी सुप्रीम कोर्ट में पुनर्वास की लड़ाई लड़ रहे हैं और कई मायनों में वहां भी उन्हें पूरा न्याय नहीं मिल पा रहा है। पूरी भागीरथी गंगा के पर्यावरणीय स्वास्थ्य को पर्यावरण एवं वन मंत्रालय या भागीरथी नदी घाटी विकास प्राधिकरण भी समझने में असफल रहा है।

टिहरी बांध की समस्याओं पर हर राजनीतिक दल और सरकारों ने बार-बार यह घोषणा की है कि वे अब टिहरी जैसा बड़ा बांध नहीं बनायेंगे और ऐसा कहते हुए गंगा घाटी में लगभग 60 बांधों की शृंखला चालू है। इन बांधों को 'रन द रिवर' कह कर आगे बढ़ाया जा रहा है। हर बार हर बांध के लिए अलग-अलग तर्क देने का प्रचलन बढ़ गया है। यदि देखा जाय तो यह तर्क एक-दूसरे को काटते हुए नजर आयेंगे।

लखवार बांध परियोजना ब्यासी बांध परियोजना से जुड़ी है, जिसमें 86 मीटर ऊंचा बांध होगा और 2.7 किमी लम्बा सुरंग

→का प्रथम स्थान है। मध्य प्रदेश में प्रति एक हजार जीवित जन्म बच्चों में से 32 की मृत्यु हो जाती है। इसके बाद क्रमशः उत्तर प्रदेश 30, ओडिसा 30, राजस्थान 29, जम्मू और कश्मीर 26 और झारखंड, बिहार, असम और छत्तीसगढ़ में 25 बच्चे आते हैं।

हमारे देश के ही एक राज्य केरल में यह मृत्यु दर सबसे कम 05 है। इसके कम होने को स्वास्थ्य के साथ केरल की शिक्षा से भी जोड़कर देखना जरूरी है। इस समय गुजरात राज्य के 'विकास मॉडल' की अधिक चर्चा है। गुजरात में एक हजार जीवित जन्मे बच्चों में से 7 दिन के अंदर मर जाने वाले बच्चों की संख्या 22 है। किसान आत्महत्या और शिशु मृत्यु दर का सहसंबंध सरकार और समाज की अराजकता का प्रतीक है। केन्द्र सरकार का एक विज्ञापन कहता है कि कुपोषण भारत छोड़ो पर यह नहीं बताता आखिर यह कुपोषण आता कहां से है? कुपोषण केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों की नीतियों में ही कहीं छुपा रहता है।

कार्ल मार्क्स ने अपने ग्रंथ 'पूंजी' में लिखा है कि 'एशिया के राज्य लगातार बिगड़ते और बनते तथा हुकूमत करने वाले राजवंश लगातार बदलते रहते हैं। लेकिन उसके विपरीत, ये ग्रामीण समाज सदा ज्यों के त्यों बने रहते हैं। 'न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून' में 'हिन्दुस्तान में ब्रिटिश शासन' नामक आलेख में मार्क्स लिखते हैं कि हिन्दुस्तानियों की पुरानी दुनिया का इस तरह बिछुड़ जाना और नई का कहीं पता न लगने से हिन्दुस्तानियों के वर्तमान दुःखों पर एक विशेष प्रकार की उदासी की परत चढ़ जाती है।

इससे हमें गांधीजी के चम्पारण में नील की खेती के विरुद्ध उनके प्रथम भारतीय किसान आंदोलन की याद आती है। आज भारत के सभी गांव चम्पारण की त्रासदी भोग रहे हैं और शेष चम्पारण बनने के भय में हैं, लेकिन हमने तो अंग्रेजी बाघ सभ्यता को ही अपना लिया है। इसके फलस्वरूप समाज आधारित समाज से हम सरकार-आधारित समाज बन गये हैं। अब सरकारों के विभिन्न विभाग समाज को बताते हैं कि कब, कहां और कैसे क्या-क्या करना है।

कोई भी सरकार इतनी बड़ी जनसंख्या का 'राशनवाला' नहीं बन सकती है। समाज आधारित समाज के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है। *(सप्रेस)*

द्वारा भूमिगत विद्युतगृह में 120 मेगावाट बिजली पैदा करने की बात कही गयी है। इसमें कट्टा पत्थर के पास 86 मीटर ऊंचा बैराज भी बनाया जायेगा। ब्यासी परियोजना भी एक के बाद एक दूसरी बांध कम्पनियों के हाथ में दी गयी है किन्तु अभी तक किसी कम्पनी द्वारा कोई निश्चय नहीं हुआ है। अब योजना आयोग लखवार बांध को वित्तीय निवेश की अनुमति देने के लिए विचार कर रहा है। देखा जाय तो इसमें कानूनों के उल्लंघनों और आवश्यक मानकों को न पूरा करने की लम्बी फेहरिस्त है किन्तु इन सबसे आंख मूंदे आगे बढ़ने की कोशिशें जारी हैं। इस परियोजना में आधारभूत पर्यावरण और सामाजिक असरों का आकलन नहीं हुआ है और न ही इसमें कोई कानूनी पर्यावरणीय और वनस्वीकृति हो पायी है। कोई भी गुणात्मक अध्ययन कार्यरत प्रस्तावित और निर्माणाधीन परियोजनाओं का नहीं हुआ है, न ही गंभीरता से इसके विकल्पों पर कोई अध्ययन हो पाया है। बांध टूटने के खतरों को जानबूझकर बहुत ही कम आंका गया है। ध्यान देने योग्य बात है कि जिस दिल्ली को पानी देने के लिए बांध बनाने का तर्क है वह दिल्ली भी इसके खतरे में है। यमुना के धार्मिक और आध्यात्मिक महत्त्व पूरी तरह से खतरे में आ गये हैं चूंकि यमुना का जो भी हिस्सा पहाड़ में सुरक्षित बह रहा था वह इसके बाद समाप्त हो जायेगा।

इस परियोजना में यमुना की ऊपरी घाटी से जुड़े राज्यों में आपस में परियोजना को लेकर कोई भी लाभ लागत के बंटवारे का समझौता नहीं हुआ है जो कि किसी भी परियोजना को वित्तीय स्वीकृति लेने से पहले की आवश्यक शर्त है। इस बात पर कोई दो राय नहीं है कि यमुना नदी देश की अत्यन्त संकटग्रस्त नदियों में से एक है और यह परियोजना उसके लिए अभिशाप सिद्ध होने वाली है। कुछ वर्षों से यमुना नदी के किनारे रहने वाले शहरों से खासकर इलाहाबाद से वृंदावन यह समझ विकसित हुई है कि दिल्ली ने यमुना को समाप्त कर दिया है और मार्च, 2013 में हजारों की संख्या में लोगों ने पैदल दिल्ली पहुंचकर इस बात का नारा भी बुलंद किया था। यमुना के लिए एक प्राधिकरण बनाने के लिए भी लोगों की मांग है। ऐसे में इस बांध की स्वीकृति जन्म से पहले ही उस प्राधिकरण की निरर्थकता को भी सिद्ध करती है। संड्रैप, यमुना जीये अभियान, माटू जनसंगठन आदि देश के अनेक संगठनों ने सरकार को यह सब तथ्य लिखकर भेजे लेकिन इन पर ध्यान देना उनका काम नहीं, शायद।

ब्यासी बांध की जनसुनवाई जून, 2007 में हुई थी, जिसमें स्थानीय लोगों के साथ माटू जनसंगठन ने कुछ तकनीकी मुद्दे भी उठाये थे जिनपर अभी कोई विचार नहीं हुआ है। ब्यासी परियोजना में लोगों की जमीनें बहुत पहले से अधिगृहीत की जा चुकी है और वे लोग बांध होगा या न होगा के झूले में झूल रहे हैं। इसलिए उनकी रुचि अब मात्र मुआबजा बढ़वाने में ही है, किन्तु यह एक हारी हुई बाजी का खेल नजर आता है। अपनी 43वीं बैठक में पर्यावरण आकलन समिति ने जिन मुद्दों को लखवार बांध के संदर्भ में उठाया था, वह बहुत ही आधारभूत प्रकृति के थे जिनका अभी तक कोई निदान नहीं किया गया है।

जून आपदा, 2013 के समय स्वयं लखवार गांव के कई मकान गिरे और ध्वस्त हुए हैं। यमुना का जिस तरह से उफान था, वह अपने में साफ था कि आप उसे बांधने की कोशिश नहीं करें।

—इंडिया वाटर पोर्टल (हिन्दी)

अब राष्ट्रपति प्रणाली की आवश्यकता

आज हिन्दुस्तान में राजनीति का स्तर इतना गिर चुका है कि देश की जनता भ्रष्ट एवं अपराधी छवि वाले राजनेताओं से उकता गयी है। देश के अधिकांश जन-मानस का वर्तमान दलीय प्रणाली एवं राजनीति से विश्वास उठ गया है। जिसकी वजह से लगभग 40 प्रतिशत जनता देश की संसद एवं विधानसभा के चुनावों में भाग लेना जरूरी नहीं समझती।

इन हालातों में देश की वर्तमान संसदीय प्रणाली के स्थान पर राष्ट्रपति प्रणाली लागू की जानी चाहिए। तभी देश के शासनतंत्र में फैले भ्रष्टाचार एवं अनुशासनहीनता को पटरी पर लाया जा सकता है। देश की जनता को कानून के शासन के साथ-साथ सुरक्षा का अहसास दिया जा सकता है।

राष्ट्रपति एवं राज्यपालों का चुनाव सीधा जनता द्वारा किया जाना चाहिए। उनका कार्यकाल निश्चित किया जाना चाहिए। एक राष्ट्रपति एवं राज्यपाल को केवल दो बार ही चुनाव लड़ने एवं अधिकतम 12 वर्ष तक अपने पद पर रहने का अधिकार होना चाहिए।

राष्ट्रपति एवं राज्यपाल के अकस्मात देहांत होने की स्थिति में या तो उपराष्ट्रपति एवं उपराज्यपाल को शेष अवधि के लिए राष्ट्रपति एवं राज्यपाल का कार्य करने का दायित्व दिया जाना चाहिए या फिर उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों को राष्ट्रपति एवं राज्यपालों के स्थान पर कार्य करने का अधिकार दिया जाना चाहिए। ऐसी व्यवस्था किये जाने से जहां देश की शासन-प्रणाली में सुधार आयेगा, वहीं देश को अनावश्यक चुनावी खर्चों से बचाया भी जा सकेगा।

जैसा कि लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने 'मेरी विचार यात्रा' पुस्तक के अपने निबंध में भी कहा है कि ''राजनीति गिर रही है, आगे और गिरेगी, टूट रही है और भी टूटेगी तथा दलीय गठजोड़ों के बजाय नया लोकतंत्र बनेगा।'' **–जयप्रकाश पराशर**

गतिविधियां एवं समाचार

युवा पीढ़ी का गांधी से जुड़ाव आवश्यक :

''बल की ताकत पर टिका समाज हमेशा बलात्कार का शिकार होता है। हमारा समाज दिन-प्रतिदिन ताकतवरों के हाथ में जा रहा है। ये हालात अच्छे नहीं हैं। हमें बल के बारे में धारणा बदलनी होगी। यदि हम यह तय कर लें कि बल का प्रयोग किसी समस्या के समाधान के लिए नहीं करेंगे तो हम कह सकते हैं कि हम गांधी के साथ हैं। यदि हमें साथ में रहना है तो हमें साथी का सम्मान करना चाहिए।'' ये बातें गांधीवादी चिन्तक नेमिचंद्र जैन 'भावुक' की तृतीय पुण्यतिथि पर गांधी भवन, जोधपुर में आयोजित 'गांधी आज' विषयक व्याख्यानमाला में बतौर मुख्य अतिथि अपने विचार व्यक्त करते हुए गांधीवादी व वरिष्ठ पत्रकार कुमार प्रशांत ने कही।

आपने कहा कि 'भावुक' ने अपना पूरा जीवन गांधी के विचारों के प्रसार में खपा दिया। वे युवाओं के लिए प्रेरणास्रोत थे। यही वजह है कि उनके सान्निध्य में रहे युवा कहीं न कहीं अपने काम में उनके आदर्शों को परिलक्षित कर रहे हैं। आज की पीढ़ी को गांधीजी के बारे में बताकर हम कुछ हासिल नहीं कर सकते। अब जरूरत युवा पीढ़ी को आज के गांधी से परिचित कराने की है। तभी इस पीढ़ी से गांधी का रिश्ता जुड़ पायेगा। सही मायने में कहें तो आज युवा पीढ़ी में गांधी के प्रति जबरदस्त रुचि है। आज हर कोई गांधीजी के अहिंसा-आंदोलन को लेकर चर्चा करता है। यह आवश्यक नहीं है। चर्चा से अच्छा तो यह होगा कि वर्ष 1869 से 1948 के गांधी के बजाय 2013 के गांधी को अपने बीच लाने की जरूरत है। इसके लिए नई सोच, नया दृष्टिकोण लाना होगा।

आज हमारा देश सोशियल इंजिनियरिंग में एक हजार साल आगे है। हमारे समाज की संरचना इतनी सुदृढ़ है कि यह टूट नहीं सकती, क्योंकि यहां एक देश, एक भाषा के सिद्धांत के बजाय यह विविध भाषाओं वाला देश है। इसी प्रकार देश की शासन-प्रणाली को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए गांधीजी ने जो परिकल्पना की थी, वही भारत के विकास में महत्त्वपूर्ण साबित हुई।

चुनाव सुधार कार्यक्रम को लेकर मध्य प्रदेश में चलाये जा रहे अभियान की चर्चा करते हुए आपने कहा कि बीजापुर क्षेत्र के प्रत्येक गांव में मतदाता परिषद का गठन किया गया। यह परिषद अपने गांव से एक प्रत्याशी का चयन करेगी। इस प्रकार उस विधान सभा क्षेत्र के सभी गांव के प्रतिनिधि अपनों में से एक का चयन करेंगे, वही प्रत्याशी सदस्य माना जायेगा। इससे न केवल पैसे की बचत होगी बल्कि वोटों की खरीद-फरोख्त पर भी अंकुश लगेगा।

वर्तमान समाज में हमें तीन भूमिकाएं निभाने की जरूरत है। पहली, सच बोलना सीखो। दूसरी, सच बोलने वालों का साथ दो और तीसरी, गलत करने वालों का साथ नहीं दें। जिस दिन हम इन तीनों में से एक भूमिका अपना लेंगे उस दिन उस समाज की दिशा ही बदल जायेगी।

राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि के मंत्री रामेश्वर विद्यार्थी ने कहा कि आज देश में जो हालात हैं, उनका उपाय गांधी के बताये रास्तों में ही निहित है। **–डॉ. भावेन्द्र शरद जैन**

वन अधिकार : उपवास और गिरफ्तारी :

उत्तराखंड लोकवाहिनी के एक दल ने राज्य स्थापना दिवस के अवसर पर 73वां-74वां संविधान संशोधन कानून तथा वन अधिकार कानून 2006 लागू करने की मांग को लेकर देहरादून में दो दिन तक उपवास किया तथा गिरफ्तारी दी।

21 व 22 सितंबर, 2013 को श्रीनगर में हुए जनांदोलन से जुड़े लोगों, बुद्धिजीवियों, विशेषज्ञों और युवाओं के एक सम्मेलन में बृहद विचार-विमर्श के बाद निर्णय हुआ कि इस वर्ष जून में आयी आपदा के पीछे अनियंत्रित और गलत विकास सबसे बड़ा कारण था। यदि उत्तराखंड में 73वां-74वां संविधान संशोधन कानून तथा वन अधिकार कानून, 2006 लागू हो गये होते तो इस तरह के विनाश की पृष्ठभूमि नहीं बनती। राहत की राशि सीधे पंचायतों को बांटने के लिए दे दी जाये और उसे जंगल से गिरी-पड़ी लकड़ी और पत्थर उठाने तथा नदियों से रेता निकालने का अधिकार दे दिया जाये तो राहत राशि सही लोगों को मिलेगी तथा आपदा पीड़ितों के मकान भी जल्दी और परिस्थितियों के अनुकूल बनेंगे।

इस आधार पर श्रीनगर सम्मेलन में यह कार्यक्रम निकला कि 2 अक्टूबर को प्रदेश के कोने-कोने से 73वां-74वां संविधान संशोधन कानून तथा वन अधिकार कानून 2006 लागू करने की मांग को लेकर प्रदेश सरकार को ज्ञापन भेजे जायेंगे। यदि सरकार ने यह मांग नहीं मानी तो राज्य स्थापना दिवस से दो दिन पूर्व देहरादून में उपवास शुरू कर दिया जायेगा। इसी कार्यक्रम के अनुरूप 7 नवंबर को उत्तराखंड सर्वोदय मंडल, उत्तराखंड लोक वाहिनी, उत्तराखंड महिला मंच, चेतना आंदोलन, आजादी बचाओ आंदोलन, हिमालय बचाओ आंदोलन आदि संगठनों के लोगों ने देहरादून के गांधी पार्क से दीनदयाल पार्क तक एक रैली निकाली और फिर वहां उपवास शुरू कर दिया। सुप्रसिद्ध संविधान विशेषज्ञ, 73वें-74वें संविधान संशोधन कानून के व्याख्याता और पीयूसीएल के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष रविकिरण जैन ने भी उपवास स्थल पर हुई सभा को संबोधित किया। उत्तराखंड लोक वाहिनी के राजीव लोचन साह, बसंत खनी व मोहन सिंह, आजादी बचाओ आंदोलन के मनोज त्यागी, हिमालय बचाओ आंदोलन के समीर रतूड़ी, दीप पाठक व निर्मलकांत विद्रोही, उत्तराखंड महिला मंच की उमा भट्ट, पद्मा गुप्ता व भुवनेश्वरी कठैत आदि लोग उपवास पर बैठे। देहरादून के विभिन्न संगठनों से जुड़े लोग और प्रमुख बुद्धिजीवी उपवास स्थल पर इन मांगों का समर्थन करने आते रहे, किन्तु उत्तराखंड सरकार का कोई प्रतिनिधि बातचीत करने नहीं आया।

अंततः यह तय किया गया कि राज्य स्थापना दिवस के मौके पर शहीद स्थल पर आ रहे मुख्यमंत्री को रोक कर ज्ञापन दिया जाये तथा अपनी बात समझायी जाये। प्रशासन ने आंदोलनकारियों की यह मांग अस्वीकार कर दी और उन्हें गिरफ्तार कर सुद्धोवाला जेल पहुंचा दिया, जहां उन्हें पांच घंटों तक भूखा-प्यासा रखकर छोड़ दिया गया। गिरफ्तार होने वालों में उपरोक्त व्यक्तियों के अतिरिक्त शमशेर सिंह बिष्ट, अमीनुर्रहमान, त्रेपन सिंह चौहान, कमल नेगी व निर्मला बिष्ट के साथ वयोवृद्ध सर्वोदयी कार्यकर्ता धूमसिंह नेगी प्रमुख थे। कुल 33 लोगों को इस तरह अवैध हिरासत में रखा गया।

आंदोलनकारियों ने तय किया है कि दिसंबर माह के दूसरे पखवाड़े से प्रदेश भर में यात्राएं कर 73वां-74वां संविधान संशोधन कानून तथा वन अधिकार कानून, 2006 के पक्ष में जनमत तैयार किया जायेगा और ग्राम पंचायतों के चुनाव में उन्हीं उम्मीदवारों को सफल बनाने की उम्मीद की जायेगी, जो इन कानूनों का समर्थन करते हैं। *(पीएनएन)*

दिल्ली के भरोसे न बैठें

❑ विनोबा

गिरते स्वास्थ्य की वजह से विनोबा ने अंततः मोटर से सफर करना तय किया। इस दौरान असम के कुछ भाई बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के कार्यक्रम में चंद रोज बाबा के साथ रहे। जाते समय उन्होंने कहा, 'पदयात्रा में जो आनंद था, वह इस यात्रा में नहीं।' विनोबा ने कबूल किया कि मोटर-यात्रा से हम अपने को अपग्रेड नहीं, डीग्रेड समझते हैं, लेकिन ईश्वर का इशारा देखकर मोटर-यात्रा शुरू की। इसी दौरान शाहाबाद के बक्सर पड़ाव की प्रार्थना-सभा में उन्होंने कहा, ''दशमुख रावण से मुक्ति दिलाने के लिए प्रभु रामचंद्र को चौदह साल यात्रा करनी पड़ी। अब इस शतमुखी रावण से जिसने समाज को ग्रस लिया है, मुक्त करने के लिए मुझ जैसे दुर्बल भक्त को चौदह बार चौदह साल चलना पड़े, तब भी काफी नहीं है। लेकिन शरीर की दुर्बलता के कारण अब पदयात्रा नहीं कर सकता, अतः मोटर-यात्रा करनी पड़ रही है।''

शेरशाह की नगरी सासाराम की प्रार्थना सभा में विनोबाजी का प्रवचन बड़ा ही अनूठा और उद्‌बोधक था। उन्होंने कहा, ''जो अच्छा इनसान होता है, वही सच्चा हिन्दू और जो अच्छा इनसान होता है वही सच्चा मुसलमान है। जो अच्छा इनसान नहीं, नेकी पर नहीं चलता, वह नाममात्र का हिन्दू और नाममात्र का मुसलमान है। जो इनसान से कम होंगे, वे चोर होंगे, डाका डालने वाले होंगे, व्यभिचारी होंगे। नाम से उन्हें भले ही हिन्दू, मुसलमान, क्रिश्चियन, बौद्ध कहा जाय लेकिन वे नाममात्र के ही हिन्दू, मुसलमान, क्रिश्चियन या बौद्ध हैं। मैं कहना यह चाहता हूं कि हिन्दू या मुसलमान इनसानियत से कुछ ज्यादा हैं। यह बात शब्द ही बतलाता है। इनसान तो साधारण मनुष्य है, नेक रास्ते पर चलता है, लेकिन मुस्लिम यानी भगवान की शरण में जाना। इनसान होने के अलावा यह और ज्यादा है। उसके ऊपर जाने वाला, भगवान के आश्रय में जाने वाला मुसलमान है।

आप पूछेंगे कि फिर क्या तुलसीदास मुसलमान थे, शंकराचार्य मुसलमान थे? तो मैं कहूंगा—जी हां, वे मुसलमान थे। हिन्दू का क्या अर्थ है? हिन्दू यानी 'हिंसया दूयते चित्तम', हिंसा से जिसका चित्त दुःखी होता है, वह हिन्दू है। जो न तो हिंसा करेगा न ही करवायेगा, वही हिन्दू है। आप पूछेंगे कि फिर क्या मुसलमान पैगम्बर हिन्दू थे, तो मैं कहूंगा—जी हां, हिन्दू थे। समझने की बात है। यह सब कुछ कुरान व वेद में आता है। कुरान में एक जगह आता है, हे पैगम्बरो! तुम लोगों की एक ही जमात है। अर्थात् जिस जमात में शंकराचार्य हुए, उसी जमात में मुहम्मद पैगम्बर हुए, उसी जमात में नानक हुए, गौतम बुद्ध हुए, ईसा हुए। दूसरी ओर वेद कहता है, विश्वमानुषः। तो मुहम्मद कौन थे? विश्वमानव थे। तुलसीदास कौन थे? विश्वमानव थे। शंकराचार्य कौन थे? विश्वमानस थे। जितने रसूल, पैगम्बर, वली, नबी, अवतार, धर्मपुरुष हो गये, सब एक जमात के हैं। उन्हें मुसलमान, सिख, पारसी, हिन्दू—ऐसे तरह-तरह के नाम देना बिलकुल विडम्बना है। अगर ये सारे रसूल यहां आकर देखें कि मुसलमान चोरी कर रहे हैं, हिन्दू डाके डाल रहे हैं, ईसाई व्यभिचार कर रहे हैं, तो वे सब कहेंगे—कम्बख्तो! अगर यही करना है तो हमारा नाम क्यों लेते हो?''

भभुआ पड़ाव पर कार्यकर्ताओं की सभा में विनोबा ने कहा, ''हिन्दू-धर्म में आश्रम-व्यवस्था बहुत ही महत्त्व की है, लेकिन आजकल वानप्रस्थ आश्रम की तरफ कोई ध्यान नहीं देते। मरते दम तक घर की झंझटों और विषयाशक्ति में फंसे रहते हैं। एक हजार लोगों में कम-से-कम सौ तो वानप्रस्थ अवस्था के लायक होंगे। सौ नहीं, अगर एक भी निकले तो चार साढ़े चार लाख निष्काम सेवक निकल सकते हैं।''

जिले के आखिरी पड़ाव डिहरी ऑन-सोन में विनोबा ने व्यापारियों की सभा में कहा, ''हमने आशा की थी कि जिस तरह एक किसान, रामचंद्र रेड्डी ने सामने आकर सौ एकड़ जमीन की मालिकी छोड़ी और उसका नाम लेकर मैं सारे हिन्दुस्तान में भूदान-ग्रामदान मांगता घूमा—उसी तरह कोई पूंजीपति आगे आयेगा और कहेगा कि इसके आगे हम अपनी पूंजी के केवल ट्रस्टी बनकर रहेंगे, तो बाबा भारत में क्रांति कर देता। आज महाजनों या व्यापारी के बिना दुनिया चलेगी नहीं, लेकिन उनको गाली दिये बिना भी कोई नहीं रहेगा। उनकी ताकत नहीं बन रही है। वह तभी बनेगी, जब वे इस विचार को समझें और साथ-साथ जमाने की मांग भी समझें।''

सरकार पर तीन अभियोग : शाम की प्रार्थना-सभा में विनोबाजी ने कहा, ''अनाज, शिक्षा और सुरक्षा के मामले में हम बिलकुल गाफिल रहे हैं। मुझे एडमंड बर्क का 'इमपीचमेंट ऑफ वारेन हेस्टिंग्स' याद आ रहा है। मैं कहूंगा कि सरकार का इमपीचमेंट (महाभियोग) किया जाय—तीन चार्ज लगाये जायें। नंबर एक, अनाज-उत्पादन में गड़बड़। नंबर दो, तालीम का ढांचा तय नहीं किया। 18 साल तक ऐसी ही तालीम दी गयी। नंबर तीन, रक्षा के मामले में असावधानी रखी। चौथा, मैं अपनी जेब में रखता हूं कि सबसे नीचे के वर्ग की ओर ध्यान नहीं दिया गया। ये चार अभियोग हैं, लेकिन तीन ही लगाये जायें। तो क्या होगा? वे कहेंगे कि हमें तो जनता ने चुना है और हम तो जनता की सहमति से काम करते हैं। तो जिम्मेवारी जनता पर ही आती है। दिल्ली के सहारे बैठे रहना ठीक नहीं। दिल्ली में यमुना के साथ शराब की नदी भी बहती है।'' *(सप्रेस)*

(विनोबाजी द्वारा भूदान-यात्रा के दौरान दिये गये व्याख्यान का अंश।)

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) अशोक भारत (प्रकाशक), सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित तथा सर्व सेवा संघ-परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001, फोन एवं फैक्स नं. 0542-2440385 से प्रकाशित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1600